दिवाला

लेखक

श्रीराधाकृष्ण प्रसाद

प्रकाशक

पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

मूल्य ॥=)

प्रकाशक
पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय (बिहार-प्रान्त)

मुद्रक
हनुमानप्रसाद
विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय
सन् १९४० ई०

विषय सूची



हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं बिहार-गौरव
प्रोफेसर शिवपूजनसहाय का

अभिमत

आरा-निवासी श्रीराधाकृष्णप्रसादजी बिहार-प्रान्त के उदीयमान नवयुवक लेखकों में एक विशेष स्थान के अधिकारी हैं। आपकी प्रतिभा का चमत्कार आपकी कहानियों में व्यक्त होकर भविष्य के लिये उज्ज्वल आशा की ज्योति जगा रहा है। राष्ट्र के उगते हुए पौदों के सींचने में आपकी नवजीवनदायिनी विचारधारा समर्थ दीख पड़ती है। परमात्मा आपके इस प्रथम 'देवता' को हिन्दी-प्रेमी समाज में चन्दन-चर्चित और पुष्प-पूजित होने का सुयोग दे।

इस पुस्तक में नव कहानियाँ और छः शब्दचित्र हैं। इन सभी रचनाओं की भाषा ललित, सरस, सजीव और प्रसाद-गुण-पूर्ण है। कहानियों की प्राञ्जल भाषा में भावुकता और सहृदयता बड़े मर्मस्पर्शी ढंग से ध्वनित हो रही है। शब्दचित्रों की कवित्वमयी भाषा में मधुर कल्पनाओं और सन्देशवाहिनी सूक्तियों ने जीवन डाल दिया है। जिस नवोन्मेषमयी प्रतिभा का कमनीय कौशल आज इतना सन्तोषप्रद प्रतीत हो रहा है, उसके परिपक्व एवं प्रौढ होने पर साहित्य की कितनी श्रीवृद्धि होगी, यह सोचकर चित्त आनन्द-गद्गद हो जाता है।

श्रीराधाकृष्णजी की इस आरम्भिक सफलता से साहित्यानुरागियों के हृदय में निस्संदेह नई आशा का संचार होगा। आपमें एक ऐसी शक्ति का स्फुरण दृष्टिगत हो रहा है जो साहित्य के सँवारने में निपुण सिद्ध होगी। परमात्मा आपको साहित्य-सेवा का शुभ अवसर दे जिससे साहित्य का मंगल हो।

—श्रीशिवपूजनसहाय

माननीय मत

हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध प्रगतिशील लेखक एवं सम्पादक श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी—'हिन्दी का साहित्य-कोष दिन-दिन बढ़ रहा है। भिन्न-भिन्न भागों में बसी उसकी सन्तानें उसमें एक-से-एक अनूठे हीरे-जवाहर भरती जा रही हैं।

विद्यापति का बिहार भी इस पुण्य प्रयास में पीछे नहीं है। पिछला बीस साल उसके आत्मबोध का काल रहा है। हर क्षेत्र में उसने कुछ ऐसे कर्तृत्व दिखलाये हैं कि देखनेवाले भौंचक में आ गये हैं। साहित्य-क्षेत्र में भी उसकी देन नगण्य नहीं। हिन्दी-कोष में उसके रतन अलग ही चमकते हैं।

बुजुर्गों के दल के बाद जवानों का दल—आज नौजवानों का नया दल बड़ी तेजी से बढ़ रहा है।

श्रीराधाकृष्णप्रसाद इसी दल की पहली पंक्ति में हैं। कुछ ही दिनों से इनकी चीजें मैं देखने लगा हूँ; किन्तु, इतने ही से मैं मान गया हूँ कि इनमें लेखक-सुलभ प्रतिभा अच्छी मात्रा में है।

भाषा में रवानी है, गति है; भावों में नौजवानी है, प्रगति है। इस छोटी-सी पुस्तिका से ही सिद्ध है, हम इनसे बहुत कुछ आशा कर सकते हैं। यह बढ़ते चलें, फूलते और फलते चलें—यही आकांक्षा है।"

—श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

अपनी बात

'देवता' मेरी पन्द्रह रचनाओं का संग्रह है, जिसमें नव कहानियाँ हैं और शेष छ शब्दचित्र। बाल एवं तरुण मस्तिष्क के लिये हमारे साहित्य में जो अच्छी पुस्तकें हैं, वे गिनी-गिनाई हैं; जीवन के यथार्थ चित्र और युग की प्रगति से परिचय करानेवाली पुस्तकों का तो सर्वथा अभाव है। इसका कारण है, हमारे महारथियों की उदासीनता। इस दिशा में हमारा पड़ोसी बंगाल ही सौभाग्यशाली रहा है। स्वर्गीय डा० शरच्चन्द्र ने तो अपनी अन्तिम अवस्था तक बाल एवं तरुण साहित्य की उपासना की और आज भी गुरुदेव रवीन्द्र इस दिशा में प्रयत्नशील हैं।

मुझे विश्वास है, यह पुस्तक हमारे तरुणों को आकर्षित कर सकेगी और आधुनिक कहानी-साहित्य की धाराओं से उन्हें बहुत-कुछ परिचय करायगी। 'देवता' में मैंने बाल एवं तरुण मस्तिष्क के मनोविज्ञान को चित्रित करने का प्रयत्न किया है और मुझे आशा है, इन मनोवैज्ञानिक रचनाओं से आज का हमारा तरुण समाज बहुत-कुछ लाभ उठायेगा।

विनीत

श्रीराधाकृष्णप्रसाद

देवता



श्रीराधाकृष्ण प्रसाद

देवता

१.

रामू के ऐसा चंचल लड़का गाँव-भर में न होगा। अभी देखिये, वह नदी से तैरकर आया है और अब उसे दूसरी बात सूझी है! लाख समझाओ—"रामू भाई, अच्छे लड़के ऐसा नहीं करते। इस तरह कैसे बड़े आदमी बनोगे?" वह झल्लाकर कहेगा—"नहीं बनता मैं अच्छा लड़का, मैं तुम्हारा उपदेश नहीं सुनना चाहता।"

उस दिन भी जब वह नदी से गोविन्द और भरत के साथ नहाकर लौट रहा था, भरत ने एक आम के गाछ की ओर इशारा कर कहा—"तू देखता है, रे रामू?"

"कौन-सी चीज?"—रामू ने चौंककर पूछा।

"अरे, वह देख, कितने बड़े-बड़े टिकोले लगे हैं!"

"सच?"

रामू ने अपनी आँखें वृक्ष पर दौड़ाईं। सच-मुच हरे-हरे आम के बड़े टिकोले खिलते नजर आ रहे थे।

"किन्तु वे तो बहुत दूर हैं, तू चढ़ भी सकेगा?"—गोविन्द बोला।

"दूर!"—रामू की आँखें चमक उठीं—"तू कहता क्या है, रे गोविन्द? पाँच मिनट में ही न तोड़ लाऊँ तो मेरा नाम रामू नहीं! ठहर तो जरा। ले, धोती थाम।"

गोविन्द बोला—"नहीं-नहीं रामू, चढ़ना मत। मैं अभी ही कहे देता हूँ; बाप रे, टाँग-ऊँग टूट जायगी तो तेरी मा मुझे सरापकर मार डालेगी।"

रामू ने धोती का फेंट बाँधते हुए कहा—"तब तूने कहा क्यों?"

"मैंने कहा, रे झूठा? मैंने कब कहा कि तू चढ़?"

"मैं तुझसे बहस नहीं करता।"—और बात-की-बात में वह पेड़ पर चढ़ गया। कुछ ही समय बाद टिकोलों की एक झोली लिये उतर आया। गोविन्द और भरत साँस रोके चौकन्ने-से खड़े थे। वे इधर-उधर देख रहे थे कि कोई आता तो नहीं।

रामू के उतरते ही गोविन्द बोला—"और, अगर तू गिर जाता, रे रामू?"

"तो क्या होता, जान ही न जाती? मुझे इसकी परवा

नहीं। मेरी मा ने मुझे बताया है कि आदमी की आत्मा कभी नहीं मरती, सिर्फ शरीर ही बदल जाता है।"

आँखें फाड़-फाड़कर गोविन्द और भरत रामू की ओर देखने लगे।

२.

रामू एक गरीब विधवा का लड़का है। उसके पिता शिक्षक थे और थे बड़े धार्मिक विचार के। आज तीन साल हुए, वे १०–१५ रोज के कड़े बुखार के बाद मर गये। उसकी मा ब्राह्मणी है, अतः गाँव की मुठिया आदि से उसका खर्च किसी तरह निकल आता है। मा ने रामू को बहुत-सी धार्मिक बातें बतलाई हैं। उसे ध्रुव, प्रह्लाद, अर्जुन, कृष्ण, राम आदि की कहानियाँ सुनाई हैं। उसे बतलाया है कि हरएक मनुष्य के हृदय में सेवा-भाव रहना चाहिये। रामू ने इन बातों को गौर से सुना और समझा है।

किन्तु इन सब बातों के अतिरिक्त गाँववाले उसमें एक अवगुण देखते हैं और वह है उसका खतरनाक कामों में हाथ डालना। वह बड़ा जिद्दी भी है और इस जिद्दी स्वभाव के कारण उसे काफी तकलीफें भी झेलनी पड़ती हैं। उसका हृदय साफ है—किसी के लिये उसके हृदय में मैल नहीं है। पढ़ने-लिखने

में भी वह काफी तेज है; किन्तु उसी एक अवगुण के कारण वह गाँव-भर में बदनाम है।

× × × ×

उस दिन शायद रविवार था, इसलिये स्कूल बन्द था। रामू नित्य की तरह गोविन्द और भरत के साथ नहाने आया था। एकादशी होने के कारण गाँव की स्त्रियाँ भी आज नहाने आई थीं। घाट पर बड़ी चहल-पहल थी।

रामू और उसके दोस्त नहा-धोकर जाने की तैयारी कर ही रहे थे कि इतने में बड़ा कोलाहल हुआ। कुछ स्त्रियाँ छाती पीट-पीटकर रोने लगीं।

रामू ने घबराकर देखा—नदी की धारा जहाँ बहुत तेज हो गई है, वहाँ एक चार-पाँच वर्ष का बच्चा लहरों में बहा जा रहा है।

सब ठिठककर जैसे काठ हो गये! किसी की हिम्मत न हुई कि उस धारा में कूद जाय। घाट पर अनेक नौजवान और प्रौढ आदमी खड़े थे, और कुछ नदी में नहा भी रहे थे; किन्तु जैसे सबको बिजली छू गई थी! ऐसी तेज धारा में कूदकर कौन अपनी जान खोवे? एक गया तो गया, अब दूसरा क्यों जान दे?

कुछ क्षणों तक रामू स्तब्ध रहा। फिर गीली धोती गोविन्द को थमाते हुए बोला—"धर तो जरा धोती।"

"अरे !......तू रामू ?"—जीभ काटकर गोविन्द बोला।

"घर भी।"—और विना उत्तर की प्रतीक्षा किये वह उस तेज धारा में कूद पड़ा। क्षण में प्रबल लहरें उठीं और देखते-ही-देखते रामू अदृश्य हो गया !

२.

घाट पर बड़ी हलचल मची।

"कौन कूदा है, जी ?"—एक ने पूछा।

"रामू।"—किसी ने उत्तर दिया।

"पच्छिमपट्टी की विधवा ब्राह्मणी का रामू ?"

"हाँ जी, वही।"

सब मानों स्तब्ध रह गये !

एक बोला—"बेचारी अनाथ हो गई।"

दूसरा बोला—"उसके बुढ़ापे की लकड़ी टूट गई।"

तीसरे ने दीर्घ साँस लेकर कहा—"कितना सुन्दर लड़का था······भाग्य का फेर !"

रामू की मा ने भी यह खबर सुनी। उसे काटो तो खून नहीं। आखिर वही बात होकर रही !

"हे भगवान् ! तुम्हें क्या यही मंजूर था ?···मेरे रामू को

बचा दो, नाथ !"—घुटने टेक, आँखों में आँसू भरकर, भगवान् की तसवीर की ओर देखती हुई वह बोली।

तीन घंटे हो गये। अबतक रामू का पता नहीं। पड़ोसिनें आईं। बोलीं—"क्या करोगी रामू की मा, अब तो वह चला गया'''अब धीरज धरो।"

सुबह से दोपहर हुआ। दोपहर भी ढल गया। गोधूली की वेला आई। अंधकार बढ़ने को आया, किन्तु रामू का पता नहीं !

रामू की मा उसी तरह घुटने टेक, एकटक से, भगवान् की तसवीर की ओर देखती ही रह गई। पड़ोसिनें समझाते-समझाते हार गईं; किन्तु वह टस-से-मस न हुई।

अंधकार बढ़ा और तारे आकाश में बिखर गये। अमा-संध्या कालिमा बिखराकर चली गई। झींगुर बोलने लगे। पास के पीपल के पेड़ पर अंधकार की चादर तन गई। एक पहर बीत गया—रामू नहीं आया !

"रामू नहीं आया !"—घर की प्रत्येक वस्तु मानों चिल्ला उठी।

विधवा ने डबडबाई आँखों से, मंद दीपक के धुँधले प्रकाश में, भगवान की तसवीर की ओर देखकर कहा—"मेरा रामू नहीं आया नाथ !"

"मैं आ गया, मा !"—कोलाहल के बीच से रामू अपनी मा की ओर बढ़ा।

"तू···तू आ गया, मेरा लाल ?"—विधवा का कंठ आनन्द के भार से अवरुद्ध हो गया !

हर्ष और पुलक को रोकने में असमर्थ होकर दरवाजे पर खड़ी भीड़ अंदर घुस गई। एक वृद्ध सज्जन ने, जो शायद गाँव के चौधरी थे, आँखों में आँसू भरकर, रामू के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"तुम्हारा रामू आदमी नहीं, देवता है मा ! इसने अपनी जान हथेली पर रखकर उस लड़के की जान बचाई है।"



खोमचावाला

१.

खोमचेवाले ने अपनी सारी जिन्दगी फेरी करने में ही बिताई है; अब वह बूढ़ा हो चला है और उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हैं। अब तो उसकी आवाज भी धीमी पड़ती जा रही है। उसका खोमचा भानुमती का पिटारा ही है! तेल की निमकियाँ, शक्कर के लड्डू, दही के वड़े और जाने क्या-क्या चीजें उसके उस छोटे-से खोमचे में भरी रहती हैं! उसका खोमचा काला पड़ गया है और मैल की तहें भी उसपर जम गई हैं। अक्सर वह मजदूरों और निम्नश्रेणी के घरों के आगे फेरी लगाया करता है। उसकी आवाज सुनते ही मैले-कुचैले और घिनौने-से लड़के निकल आते हैं और उसे पुकारकर कहते हैं—'खोमचेवाले! अजी ओ खोमचेवाले!"

खोमचावाला उनको देखकर एक अजीब ढंग से मुस्कुरा देता है जिसका अर्थ आप अनेक प्रकार से निकाल सकते हैं।

उसकी वह मुस्कुराहट उसकी घनी मूछों में धीरे-धीरे विलीन हो जाती है और खोमचा रखते हुए वह पूछता है—क्या लोगे ?

खोमचेवाले ने दुनिया देखी है, कई उलट-फेर उसके सामने में हो गये, किन्तु जैसे वह इन सब बातों से एकदम अलग है ! उसकी दुनिया उसके खोमचे तक ही सीमित है। वह बोलता कम है और प्रायः उत्तर में सिर हिलाकर स्वीकृति की सूचना देता है। उसका असली नाम क्या है, यह अब भी एक रहस्य है। सर्वसाधारण उसे 'खोमचावाला' ही कहते हैं और वह इस नाम से काफी अभ्यस्त हो चुका है।

कानपुर–जैसे बड़े शहर में, आज वह उन्नीस वर्षों से रहता आ रहा है। शहर की गन्दी गली में उसने एक कमरा किराये में ले रक्खा है। सुबह से लेकर शाम तक शहर में चक्कर लगाया करता है और सन्ध्या के साथ-ही-साथ मुरझाया-सा होकर घर लौट आता है ! उसकी स्त्री को मरे हुए प्रायः बीस वर्ष के करीब बीत गये हैं और सन्तान के नाम पर उसे एक लड़की हुई थी, जो कुछ महीने हुए, अपनी ससुराल में एक बच्ची छोड़ चल बसी है। अपनी लड़की की ससुराल से वह उस बच्ची को उठा लाया है, कारण उसका बाप नशेबाज है।

लड़की अपने नाना से बहुत हिलमिल गई है और जब

कभी उसके गले में हाथ डालकर झूमने लगती है, तब खोमचेवाले की आँखें सजल हो उठती हैं। अपने इस शुष्क जीवन में, खोमचेवाले को लगता है, जैसे कहीं से झरने का सुन्दर स्रोत वह उठा है! वह प्यार से जब उसकी ठोढ़ी उठा कहता है—'विन्दी, तू तो मुझे छोड़कर न जायगी?' तब उस छोटी-सी लड़की की आँखें भय और कुतूहल की धाराओं से भर जाती हैं!

वह लड़की उसे बहुत ही प्रिय है और इसलिये वह उसकी खूब अच्छी तरह देखभाल करता है। पहले-जैसा वह घर आने में देर नहीं करता और जब वह घर लौटता है, उसके लिये एक-दो पैसे की कोई नई चीज जरूर लिये आता है।

विन्दी दरवाजे पर खड़ी रहती है; पैरों के बल पर उचक-कर जब वह उस गली के अन्तिम छोर पर अपने बाबा को आते हुए देखती है, तब उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता! दौड़कर उससे लिपटती हुई वह छोटी-सी लड़की प्रश्नजनक मुद्रा बनाकर पूछती है—'आज क्या लाये, बाबा?'

खोमचेवाला अपने हाथ को ऊँचा उठाकर, कहता है—'समझो न क्या चीज है?'

लड़की की आँखें चकाचौंध हो उठती हैं और अन्त में

खोमचावाला उसे गोद में उठा, उसके कपोलों पर स्नेह का चिह्न अंकित कर देता है !

२.

यह समस्या खोमचेवाले के आगे बहुत ही कठिन थी; एक तरफ दो रुपये का सवाल था और दूसरी ओर लड़की का भोला-सा शिशु-हृदय।

वह बोला—'बिन्दी बेटी, मान जा, वह खिलौना अच्छा नहीं है; वह जल्द टूट जायगा।'

किन्तु बिन्दी ने जिद ठान ली थी कि वह उस खिलौने को जरूर लेगी। 'कैसे भक-भक वह गाड़ी चलती है!' उसने कहा, अच्छा क्यों नहीं है, बाबा···कमला तो उससे खेल रही थी··· बड़ी तेज वह गाड़ी दौड़ती है, बाबा।'

बूढ़े खोमचेवाले के हृदय में एक हूक-सी उठी और उमड़-घुमड़कर रह गई। वह कैसे अपनी नादान बिटिया को समझाये कि कमला सामने वाले सेठ साहब की लड़की है, और उनके लिये दो रुपये कोई बड़ी चीज नहीं ! वह तो सेठ साहब का ही किरायेदार है, फिर भला उनके साथ उसको तुलना कैसे हो सकती है ?

विन्दी ने उसके हाथ को झकझोरकर कहा—'वोलो न, वावा।'

वूढ़ा चुप था। वह क्या उत्तर दे? एक शिशु की कोमल आकांक्षा उसके सामने ही तो झुलस रही है।

'वावा, वोलो न, ला दोगे?'

'अच्छा विटिया।' वूढ़े ने रुकते हुए जवाव दिया।

× × ×

और, रास्ते में खोमचावाला सोचता था, अव क्या होगा? दिन-भर वह शहर का चक्कर लगाता रहा। 'दहीवड़े! शक्कर के लड्डू!! ताजा जलेवियाँ'—उसकी यह आवाज नित्य की तरह उस गन्दे मुहल्ले में गूँज उठती, किन्तु उसमें और दिन की तरह कड़ापन न था; वल्कि एक थर्राहट थी, एक असन्तोष था। रह-रहकर वह अशान्त हो उठता था···दो रुपये···रेल की गाड़ी···वोलो वावा, ला दोगे? अच्छा विटिया।

धीरे-धीरे शाम हो आई, बिजली की वत्तियाँ जल उठीं, किन्तु खोमचावाला इधर-उधर घूमता ही रहा और जव पुलिस लाइन का घंटा नौ वार वजा, तव वह घर की ओर वढ़ा।

विन्दी को आँखें आज इन्तजार करते-करते थक गई थीं;

उसके नन्हे पैर खड़े रहने के कारण अकड़ रहे थे, किन्तु फिर भी वह किसी मधुर आशा के स्वप्न में विभोर-सी थी।

'आज वहुत देर लगाई, वावा।' विन्दी के पीले चेहरे पर खुशी की लहरें फूट पड़ीं—'और मेरी रेलगाड़ी ?'

बूढ़ा ठिठककर खड़ा हो गया, मानों उसने कोई भारी अपराध किया है। आज कुल जमा ७ आने पैसे आये !

'बोलो बाबा, मेरी रेलगाड़ी लाये ?'

बूढ़ा चुप रहा।

विन्दी समझ गई; फिर उसने एक शब्द भी न कहा और चुपचाप विछौने पर जाकर सिसक उठी !

३.

विन्दी का छोटा-सा दिल शायद इस आघात को सह न सका। और जाने, किस वजह से दूसरे ही दिन उसे बुखार हो आया। एक दिन बीता''दो दिन''तीन दिन और इस तरह छः दिन बीत गये ! विन्दी का ज्वर न उतरा। खोमचावाला रात-दिन उसके पास रहता। उसने फेरी लगाना इधर बन्द कर दिया था, फलतः घर में फाँके की नौबत आ गई थी !

वेहोशी में विन्दी वड़वड़ा उठती—'बाबा''''मेरी रेल-गाड़ी !' वेचारा बूढ़ा पीला पड़ जाता। वह सांत्वना-भरे स्वर में

कहता—'चुप रह बिटिया···तू अच्छी हो ले···तुझे जरूर रेलगाड़ी ला दूँगा···।'

किन्तु अभागी लड़की ठीक तरह से दवादारू और हवापानी के अभाव में विना रेलगाड़ी लिये, सातवें दिन की सुबह में चल बसी !

बूढ़ा खोमचावाला अब भी जीवित है। कानपुर के उन गन्दे मुहल्लों में, जहाँ मजदूरों और निम्नश्रेणी की टोलियाँ बसती हैं, उसकी भर्राई हुई आवाज रह-रहकर गूँज उठती है—'दहीवड़े ! शक्कर के लड्डू !! ताजा जलेबियाँ !!!'

———

परिश्रम का मूल्य

१.

वह एक गरीब मजदूर था। दिन-भर जी तोड़कर परिश्रम करने के पश्चात् उसे कुछ पैसे मिलते थे। वह उन पैसों से ही अपने परिवार का खर्च किसी तरह चलाता था। वह नेक था, ईमानदार था और दुनिया के जाल-फरेबों से अनभिज्ञ था। वह स्वस्थ था; कड़े परिश्रम ने उसके हरेक अङ्ग को सुडौल बना रक्खा था। उसके पास न तो पाउडर थे, न क्रीम। यहाँ तक कि अपने जीवन में एक साबुन भी उसने बदन पर खर्च नहीं किया था। हाँ, कपड़े साफ करनेवाले साबुन से वह कपड़े जरूर साफ कर लिया करता था।

उसका घर बहुत ही छोटा, खण्डहैल था। उसमें बिजली की बत्तियाँ नहीं लगी थीं। हवा देनेवाले फैन नहीं थे। उसके पास पलँग न था; यहाँ तक कि एक खाट भी न थी। वह और उसका परिवार जमीन पर ही सोता था।

वह खूब पढ़ा-लिखा और शिक्षित नहीं था। लड़कपन में उसने बहुत ही थोड़ी शिक्षा पाई थी। किन्तु उसका आचरण ठीक था। वह किसी से घृणा नहीं करता था और न किसी को कुछ अपशब्द ही कहता था।

परिवार में उसकी स्त्री थी और एक लड़का था। स्त्री ने उसी का स्वभाव पाया था। वह पड़ोसियों से डाह नहीं रखती थी। लड़का भी पूरा हँसमुख और सुशील था। उसके होंठों पर हँसी सदा नाचती रहती थी। वह भी अपने पिता के साथ मजदूरी किया करता था।

संक्षेप में कहें, तो उसका परिवार अपनी स्थिति पर प्रसन्न था। दुनिया से उस मजदूर की कोई शिकायत नहीं थी। उसके जीवन की नौका सन्तोष की पतवार के सहारे शान्त-भाव से बढ़ी जा रही थी।

२.

और, वह एक बहुत ही धनी आदमी था। उसकी एक आलीशान इमारत थी, जो आकाश को छूती-सी जान पड़ती थी। उस अट्टालिका में सैकड़ों सुन्दर कमरे थे और हरएक कमरे में बिजली की बत्तियाँ और पंखे लगे हुए थे। उसकी लोहे की तिजोरियों में असंख्य रुपये रक्खे हुए थे। वह अपनी मसनद

के सहारे सारा दिन केवल रुपयों को ही गिना करता था। उसके पास रंग-बिरंग की चीजें थीं। चमकते हुए बहुमूल्य हीरे, आँखों में चकाचौंध पैदा कर देनेवाले जवाहरात और ढेर-के-ढेर कीमती मोती उसके सन्दूकों में बन्द थे।

पर, वह स्वस्थ नहीं था। दिन-भर के आलस्य ने उसके स्वास्थ्य को नष्ट कर दिया था। वह पूरा झूठा, धोखेबाज और जाली था। झूठ और अपने काँइयापन से ही उसने इतना धन बटोर रक्खा था। मजदूरों को कम मजदूरी दे और गरीबों का गला घोंटकर ही वह पूँजीपति बना बैठा था।

उसे रात-दिन नींद नहीं आती थी। उसकी अट्टालिका पर अनेक आदमी बन्दूक लेकर पहरा दिया करते थे; किन्तु फिर भी उसे अपने धन के खो जाने का विश्वास था।

वह सदा ही रोगी रहा करता था। उसके महल में अनेक प्रकार की सुन्दर खाने-पीने की चीजें मौजूद रहती थीं। किन्तु, उससे कुछ भी खाया नहीं जाता था। उसे हमेशा रोग सताता था। डाक्टरों की भीड़ उसे सदा घेरे रहती थी।

उसके भी एक स्त्री और एक लड़का था। स्त्री अपने धन के घमंड में पड़ोसियों से घृणा करती थी। वह पूरी ईर्ष्यालु स्वभाव की थी और उसका नवजवान बेटा भी पूरा आवारा

था। रात-दिन वह आवारागर्दी में रहकर लाखों रुपये फूँक रहा था।

संक्षेप में कहें, तो उसका परिवार छिन्न-भिन्न और एक दूसरे से अलग था। वह धनी आदमी अपनी स्थिति से संतुष्ट न था। दुनिया से उसकी बहुत शिकायतें थीं।

३.

एक दिन उस गरीब मजदूर को कोई काम नहीं मिला। उस दिन उसके परिवार को भूखा रह जाना पड़ा।

संयोगवश ऐसा हुआ कि उस धनी आदमी से इस गरीब आदमी की भेंट हो गई।

उसने कहा—"यदि आप मुझे कोई काम दे सकें, तो मैं आपका बड़ा ही कृतज्ञ होऊँ। आज दिन-भर मेरे परिवार को भूखा रह जाना पड़ा है। पैसे नहीं रहने के कारण मैं बहुत ही दुखी हूँ।"

"पैसे नहीं रहने के कारण?"—धनी आदमी ने आश्चर्य में डूबकर कहा।

"जी हाँ, दुनिया में पैसा ही तो सब कुछ है"—मजदूर ने उत्तर दिया।

"सब कुछ?"

"इसमें क्या सन्देह है।"

"तो मैं सुखी क्यों नहीं हूँ ?"

"क्या आप पैसे रहते हुए भी सुखी नहीं हैं ?"—मजदूर के स्वर में आश्चर्य था।

"नहीं।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"क्या ?"

"यही कि पैसे रहते हुए भी आदमी दुखी रहे।"

"मेरा ऐसा ही खयाल है।"

"किन्तु, मैं इसे नहीं मानता।"

कुछ क्षण तक धनी आदमी ने सोचकर कहा—"अच्छा, एक बात कहूँ ?"

"कहिये।"

"मैं तुम्हें पाँच सौ रुपये देता हूँ।"

"पाँच सौ !"—मजदूर को ऐसा मालूम हुआ, मानों वह सपना देख रहा हो।

"हाँ, मैं तुमसे फिर माँगूँगा भी नहीं। किन्तु, एक महीने के बाद तुम आकर कहना कि तुम सुखी हो या दुखी।"

यह कहकर उस धनी आदमी ने पाँच सौ रुपये उसे दिये।

४.

पाँच सौ रुपये लेकर खुशी से नाचता हुआ मजदूर घर आया। उसकी स्त्री और लड़के ने भी यह बात सुनी और वे दोनों ही बड़े खुश हुए। धीरे-धीरे यह बात पड़ोसियों में फैल गई कि उसके पास पाँच सौ रुपये हैं।

अब वह मजदूर हमेशा शंकित रहा करता था कि कोई पड़ोसी उसके रुपये चुरा न ले। इसलिये, वह अपने दरवाजे को सन्ध्या होते ही बन्द कर देता था। भर रात जागते ही बीतती थी। अब वह किसी पड़ोसी से बात भी नहीं करता था और न कहीं मजदूरी करने ही जाता था।

इस तरह बीस दिन बीत गये। मजदूर को आलस्य के कारण अनेक रोग हो गये और खूब कीमती चीजें खाने के कारण उसे अजीर्ण रोग भी हो गया। इधर, उसके लड़के को रुपये रहने के कारण नई-नई चीजों का शौक हुआ। वह हँसमुख एवं सुशील के बदले उद्दंड और क्रोधी होता गया। उसकी स्त्री के स्वभाव में भी परिवर्तन आने लगा। अब वह अपनी पड़ोसिनों को अपनेसे तुच्छ मानने लगी।

धीरे-धीरे महीने का अन्तिम दिन आ गया।

५.

महीने के अन्तिम दिन को वह मजदूर तीन सौ रुपयों की

थैली लेकर उस धनी आदमी के पास पहुँचा। धनी आदमी उसकी दशा देख मुस्कुराया।

मजदूर की आँखें अनिद्रा और चिन्ता के कारण धँस गई थीं। उसका चेहरा पीला पड़ा हुआ था।

धनी आदमी ने मुस्कुराकर पूछा—"क्या और रुपये लेने आये हो?"

"जी नहीं"—तीन सौ की थैली बढ़ाता हुआ मजदूर बोला—"मुझे क्षमा करें, मैं बड़े भ्रम में था। इसमें सन्देह नहीं कि इस युग में रुपया बड़े काम की चीज है; किन्तु वह वास्तव में सच्चा सुख नहीं पहुँचा सकता। यदि दुनिया में कोई पाप है, तो आवश्यकता से अधिक रुपया रखना। हमें सच्चा सुख तो उसी समय मिलता था, जब हम दिन-भर के परिश्रम के बाद अपनी सूखी रोटियों को अपने परिवार के बीच हँसते-खेलते खा लेते थे। रुपया दुनिया के सारे पापों की जड़ है। यदि आज दुनिया से रुपये का खेल उठा दिया जाय, तो सारी दुनिया सुखी हो जाय। यह कब सम्भव है कि बिना परिश्रम के, गरीबों का खून चूसकर, जमा किये पैसों से सच्चे सुख को खरीदा जाय? अब मेरा भ्रम दूर हो गया और मैं अपनी मिहनत की रोटी में ही सच्चे सुख को देख रहा हूँ।"

कर्त्तव्य

१.

पुराने युग की एक उपदेश-प्रद कहानी

भारत का वह युग स्वर्णकाल था। विशाल समुद्र के वक्षस्थल को चीरती हुई भारतीय नौकाएँ विदेशों में अपनी कला और सभ्यता का प्रचार करने जाती थीं।

हिमालय की रमणीय तलहटी में भिक्षु महानन्द की एक सुन्दर कुटिया थी। उनके अनेक शिष्य थे; किन्तु उनका स्नेह अधिकतर हेमचन्द्र पर था।

हेमचन्द्र अभी किशोरावस्था में था; किन्तु उसकी तीक्ष्ण बुद्धि और उसके सुडौल शरीर को देखकर कोई भी आगन्तुक आकृष्ट हो सकता था। बौद्ध-भिक्षुओं की मंडली प्रायः भिक्षु महानन्द के यहाँ आकर ठहरती थी। उन दिनों आश्रम में एक अजीब उत्साह—शान्ति और सन्तोष का वायु-मंडल—छा जाता।

पूर्णिमा का चाँद आकाश में हँस रहा था। दूध-सी स्वच्छ चाँदनी बिखरी पड़ी थी। सामने नदी का स्रोत अविराम गति से वह रहा था। हेमचन्द्र ने एक बार अपनी आँखें चारों ओर फैलाईं। प्रकृति की सुन्दरता देख उसका हृदय नाच उठा। इसी समय उसने सुना—'महाभिक्षु धर्मगुप्त आये हैं।'—उनके स्वागत की तैयारियाँ होने लगीं; आश्रम में एक नूतन संसार बस गया।

महाभिक्षु धर्मगुप्त ने भी हेमचन्द्र को देखा—उच्च ललाट! मुग्धकारी चेहरा! ब्रह्मचर्य की कान्ति! और, सबसे अधिक उसकी तार्किक बुद्धि से वे आकृष्ट हुए। उन्होंने भिक्षु महानन्द की ओर देखकर कहा—भिक्षु!

"हाँ, देव!"—सिर नीचा कर महानन्द बोले।

"हेमचन्द्र को मैं अपना प्रधान शिष्य बनाऊँगा।"

महाभिक्षु को आज्ञा! आश्रम में एकदम सन्नाटा छा गया!

"यह प्रतिभावान् बालक भगवान् बुद्ध का आशीर्वाद दीख पड़ता है।"

हेमचन्द्र ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया।

"तुम्हें पसन्द है न, महानन्द?"

महानन्द क्या उत्तर दें? अपने आचार्य को आज्ञा वे कैसे

टाल सकें ? किन्तु उनका हृदय हेमचन्द्र के लिये छटपटा उठा ।

"भिक्षु ! मोह और ममता संसार की क्षणभंगुर चीजें हैं ।" —महाभिक्षु बोले । आश्रम में सन्नाटा छाया ही रहा ।

२.

चाँद की कला की नाईं हेमचन्द्र बढ़ने लगा । महाभिक्षु धर्मगुप्त के साथ वह नालंदा, तक्षशिला, पाटलिपुत्र, बोधगया, कपिलवस्तु, सारनाथ, कुशीनगर, बनारस आदि प्रसिद्ध स्थानों में घूमता फिरा । उसकी विद्वत्ता की प्रशंसा दूर-दूर तक फैल गई।

एक दिन महाभिक्षु ने उसे बुलाकर कहा—"वत्स !"

हेमचन्द्र, सिर झुकाये, गुरु के निकट खड़ा रहा ।

"हेम, भगवान् बुद्ध के संदेश पहुँचाने तुम्हें लंका जाना होगा ।"

हेमचन्द्र पूर्ववत् नतमस्तक खड़ा था।

महाभिक्षु की वाणी धीरे-धीरे गम्भीर होती गई—"तुम्हें याद होगा वत्स, प्रियदर्शी सम्राट् अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को लङ्का भेजा था । उनकी मृत्यु के पश्चात् कुछ भागों में भगवान् बुद्ध की वाणी को लोग भूल गये हैं। अतएव वहाँ जाकर तुम्हें उस वाणी को जगाना होगा ।"

महाभिक्षु चुप हो गये। वायु में भी निस्तब्धता छा गई।

३.

हेमचन्द्र की नौका समुद्र की तरंगों में बही जा रही थी। समुद्र में भीषण ज्वार था। कभी नौका भी तरंगों के बहुत ऊपर चली जाती, कभी नीचे। नाविक ने कहा—"भिक्षु! लौट चलो, अभी हमलोग अधिक दूर नहीं आये हैं।"

हेमचन्द्र गंभीरतापूर्वक मुस्कुराया। फिर दृढतापूर्वक सिर हिलाकर कहा—"नहीं नाविक, ऐसा होना असम्भव है।"

नाविक ने काँपते हुए स्वर में कहा—"भिक्षु! वह देखो, एक भयंकर तूफ़ान आने की संभावना है; उसमें पड़कर नौका चूर-चूर हो जायगी।" इसी समय एक जबरदस्त लहर आई—नौका को बहुत दूर फेंक दिया!

नाविक चिल्लाया—"तुम्हें प्राण क्या प्रिय नहीं हैं, भिक्षु?"

"बौद्ध भिक्षु मृत्यु से नहीं डरते, नाविक! एक बार पैर बढ़ाकर हेमचन्द्र पीछे हटना नहीं जानता।"

लाचार हो नाविक, अपने प्राणों के मोह से, पतवार छोड़, कूद पड़ा अथाह में, और तैरता हुआ तट की ओर चला गया! अब? अनभिज्ञ हेम! उसे पतवार पकड़ना तक नहीं आता—

नाव चलाना दूर ! नौका तरंगों में खेल रही थी, किन्तु हेमचन्द्र के अधरों पर दिव्य मुस्कुराहट थी !

अनुभवी नाविक की बात सत्य निकली। कुछ ही क्षण में एक भीषण तूफान आया। नौका उलट पड़ी। हेमचन्द्र तूफानी चपेटों में पड़ अगाध जलराशि में लीन हो गया !!

४.

भगवान् बुद्ध की कृपा ! बिना खाये पीये तीन दिन तक अचेतावस्था में हेमचन्द्र बहता रहा। चौथे दिन बहुत दूर पर कुछ मल्लाहों ने एक बौद्ध-भिक्षु को बहता देख किसी तरह बाहर निकाला। शरीर काला पड़ गया था। समुद्री जीवों के काटने से जहाँ-तहाँ घाव हो गये थे। पर आश्चर्य यह कि अब भी कुछ साँस चल रही थी ! कुछ उपचार के बाद हेमचन्द्र की आँखें खुलीं। शान्तचित्त हो वह चलने को तैयार हुआ। मल्लाहों ने बहुत रोका; कहा—"भिक्षु, अभी आप पूर्णरूप से स्वस्थ नहीं हुए हैं, कहीं जाने की चेष्टा छोड़ दें।"

हेमचन्द्र ने क्षीण स्वर में उत्तर दिया—"भगवान् बुद्ध का संदेश बिना पहुँचाये हम नहीं रुक सकते। जिस कार्य के लिये हम आये हैं, यदि उसकी पूर्त्ति के बिना ही मेरे प्राण चले जायँ, तो जीवन व्यर्थ कहलायेगा।"

५.

भिक्षु हेमचन्द्र की वाणी लंका में गूँज गई। भूले-भटकों ने भगवान् बुद्ध की शरण में आकर संतोष की साँस ली। किन्तु हेमचन्द्र का स्वास्थ्य दिन-दिन खराब होता गया। घाव बढ़ गये। शरीर कृश हो चला। एक दिन सुन्दर प्रभात में उसने अपने शिष्यों को एकत्र कर कहा—"मेरा अन्तकाल निकट आ गया है; अब मैं भगवान् बुद्ध के चरणों में शरण लूँगा। तुमलोगों से मुझे आशा है कि भगवान् बुद्ध की इस ज्योति को और भी प्रखर करोगे। मैंने अपना 'कर्त्तव्य' किया—गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर उसे पूरा किया। मेरी आत्मा अब तृप्त है।"

कुछ क्षणों के पश्चात् हेमचन्द्र की आँखों को ज्योति अनन्त निद्रा की गोद में सो गई। शिष्यों की आँखें डबडबा उठीं। बाहर वायु में भी उदासीनता छाई थी!



दीप-दान

बात उन दिनों की है, जब भगवान् बुद्ध की निर्मल वाणी संसार के कोने-कोने में फैल रही थी। महलों में प्यार के मृदुल थपेड़ों से पालित सिद्धार्थ का हृदय कुछ अभाव का अनुभव कर रहा था। दुनिया के सारे वैभव उनके पास थे। स्वस्थ स्वर्ग की अप्सरा-सी सुकुमार पत्नी यशोधरा और फूल-से मनोहर शिशु राहुल के रहते हुए भी, उनका हृदय छटपटा रहा था। और, एक दिन उस 'अभाव' को ढूँढ़ने के लिये उनके पैर चल पड़े। कितने हेमंत गुजरे, वसंत आये और गये, फूल खिले और मुरझाये! सिद्धार्थ ने उस चिर अभाव को ढूँढ़ निकाला था। झुंड-को-झुंड जनता उनके अमृतमय उपदेशों को सुनती और उनकी शरण में आ जाती।

उनकी वाणी में जादू था; हृदय में सम्मोहन शक्ति थी और थी जनता के अज्ञान के प्रति दुःख-पूर्ण कातरता! लोग

उनके उपदेशों को सुनते ; उनकी आँखें भर आतीं और उनका हृदय गद्‌गद् हो कह उठता—

बुद्धं शरणं गच्छामि ;
धम्मं शरणं गच्छामि ;
संघं शरणं गच्छामि ।

❀ ❀ ❀ ❀

तो वात ऐसे ही दिनों की है। राजा बिंबिसार भगवान् बुद्ध की वाणी से प्रभावित होकर उनका परम भक्त वन गया था। एक वार उसने भगवान् बुद्ध से उनके पैर के नाखून का एक टुकड़ा माँग, अपनी राजवाटिका में उसे गाड़, उसपर एक सुन्दर स्तूप का निर्माण करवाया था।

संध्या के साथ ही साथ उस स्तूप पर अगणित दीप वल उठते। पुरुषों और स्त्रियों की अपार भीड़ रोज संध्या को उसपर फूल बिखेरती और उन दीपों की आभा में मनुष्य का चिरकातर हृदय मानों शांति एवं सांत्वना की एक प्रबल रेखा देखती थी।

❀ ❀ ❀ ❀

उसका नाम श्रीमती था। यौवन के सारे रंग उसमें भर चुके थे। किंतु, वह इस संसारी मोह-माया से सर्वथा परे थी।

वह राजा बिंबिसार के यहाँ मुख्य परिचारिका थी और उसका हृदय भगवान् बुद्ध की वाणी से प्रभावित हो चुका था।

वह भी रोज स्तूप पर दीये जलाती, फूल बिखेरती और श्रद्धा के भार से उसका मस्तक भगवान् बुद्ध के चरणों पर आप-ही-आप झुक जाता।

दिन बीते जा रहे थे और श्रीमती का हृदय नित्य दिव्य ज्ञान से आलोकित होता जा रहा था।

किन्तु, परिवर्तन का एक जबरदस्त झोंका आया।

बिंबिसार के मरने के बाद उसका पुत्र अजातशत्रु राजगद्दी पर बैठा। उसका विचार उसके पिता के विचारों से सर्वथा प्रतिकूल था। पिता जितने बड़े बुद्ध-भक्त थे, वह उतना ही बड़ा उनका शत्रु निकला। उसके हाथ में तलवार थी; राज्य की बागडोर थी। तलवार के द्वारा उसने सारे संसार से बौद्ध-धर्म को निर्मूल करना चाहा, उसे मटियामेट करने का दृढ़ संकल्प किया।

राजधानी में लोगों ने ढिंढोरा सुना—'संसार में वेद, ब्राह्मण और राजा के अतिरिक्त किसी की आराधना करना अपराध है। इसका उल्लंघन करनेवाले को कठोर दंड दिया जायगा।'

राजा की आज्ञा ! किसकी हिम्मत जो इसके विरुद्ध आवाज उठाये ? जनता भगवान् बुद्ध का नाम भूलकर भी न लेने लगी। उनकी पूजा सारे राज्य में वंद हो गई। और, वह स्तूप दीपों के अभाव से अंधकार में पड़ा रहने लगा।

❀ ❀ ❀ ❀

श्रीमती ने इस अत्याचार को देखा।

उसका हृदय विद्रोह कर उठा। मानवता ने उसके हृदय को उकसाया। वह विद्रोही वन गई !

गोधूलि की वेला में उसने स्नान किया, दीपों और फूलों से थाली सजाई।

रानी के पास जाकर वोली—"महारानी, चलिये न दीप जलाने।" महारानी स्तब्ध हो गई। काँपती हुई वोलीं—"अरे ! तू श्रीमती ?......तुझे यह क्या सूझा...?......राजाज्ञा तूने नहीं सुनी ?"

"सुनी है, महारानी !" ओठों पर मलिन मुस्कुराहट लिये वह आगे वढ़ गई।

राजवधू अमिता के पास पहुँची। वोली—"चलो न वहूरानी, दीप जलाने।"

"दीप जलाने ?"—वहू ने जीभ काट ली और इधर-उधर

देखकर कहा--"तू पागल हो गई है, श्रीमती ! जानती नहीं ? इसकी सजा प्राणदंड है !"

"जानती हूँ, बहूरानी···!" और वह फिर आगे बढ़ गई। राजकन्या शुक्ला के पास पहुँची। बोली--"चलो न राजकुमारी, दीप जलाने···।"

"क्या कहा, श्रीमती ?"—राजकुमारी सन्न हो गई। "तू जानती नहीं, श्रीमती···?"

"जानती हूँ राजकुमारी, खूब जानती हूँ।" कहकर वह आगे बढ़ गई। नगर में आकर वह कहने लगी—"ओ नगरनिवासियो, क्या प्रभु के चरणों पर आज दीप नहीं जलाओगे ?"

किन्तु, कहीं से उत्तर न मिला। सब पत्थर होकर उसकी ओर देखते रह गये। किसी ने दया के शब्दों में कहा—"बेचारी पागल मालूम होती है।"

   

ऊपर शरत् की अँधेरी रात के करोड़ों नक्षत्र श्रीमती की ओर एकटक से देख रहे थे।

यह क्या ?·····स्तूप के पास यह कैसा दिव्य प्रकाश है ?·····इस भयानक अँधेरी रात में···?

राजवाटिका के पहरेदार सन्न हो गये······गरजते हुए बोले—'राजा की आज्ञा उल्लंघन करनेवाली कौन है री, तू ?'

श्रीमती के नेत्र बंद थे। भक्ति और श्रद्धा के कुछ अस्फुट शब्द उसके ओठों से निकल रहे थे। उसी भाव में डूबकर उसने कहा–'मैं ? मैं हूँ श्रीमती···भगवान् बुद्ध की उपासिका···!'

शब्द पूरे भी न होने पाये थे कि नंगी तलवार ने एक पल में ही श्रीमती की गर्दन को उड़ा दिया।

   

खून की धारा से स्तूप लाल हो उठा। फूल उसमें सनकर और भी सुन्दर दीखने लगे और दीपों की प्रबल आभा के बीच, श्रीमती के कटे हुए सिर के खिलते अधर और भी मुस्कुराने लगे।*

---

*—'भारत के स्त्री-रत्न' नामक पुस्तक के 'श्रीमती'-चरित्र के आधार पर—लेखक

प्रतीक्षा

नन्हा-सा बच्चा था। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं, जिनमें भोलापन झलकता था। वह सिर्फ हँसना ही जानता था—रोना नहीं। उसकी आँखें कुतूहल से भरी रहतीं—मानों वह दुनिया की हरएक चीज को समझना चाहता हो।

वह एक गरीब का लड़का था। नाम था मुन्नू, और उम्र रही होगी ५-६ साल की।

एक दिन उसने अपनी मा की गोद में सिर छुपाये ही कहा—"मा!"

"क्या रे, मुन्नू ?"—मा ने स्नेह का स्रोत उँड़ेलकर कहा।

मुन्नू उठ बैठा। अपनी नन्ही उँगली को आकाश की ओर उठाते हुए बोला—"इस आसमान के बाद ही तो 'सरग' है, मा ?"

"हाँ रे, सब तो ऐसा ही कहते हैं।"

"वहाँ बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें हैं न, मा ? परियाँ सब वहीं रहती हैं न ?"

"हाँ बेटा, वहाँ परियाँ ही नहीं, बहुत-से देवता भी रहते हैं।"

"और वह सात घोड़ोंवाला राजकुमार ?"

"वह भी रहता है, बेटा !"

मुन्नू कुछ रुककर सोचने लगा ! उसके छोटे-से मस्तिष्क ने कल्पनाओं का एक महल बनाया—उस महल में वह रहेगा, सात घोड़ोंवाले राजकुमार को अपने पास बिठायगा।···वह सात घोड़ोंवाला राजकुमार कितना बहादुर है ? उसने तेरह समुन्दर लाँघकर राजकन्या को ब्याहा। वह जरूर ही उसे अपना साथी बनायगा। फिर परियों का झुंड उसके राजमहल पर पहरा देगा। वह नौ लाख का हार पहनेगा !

मुन्नू ने कहा—"मा !"

"क्या, बेटा ?"

"मैं भी वहीं जाऊँगा।"—अपनी आशा-भरी आँखों को उसने अपनी मा के चेहरे पर गड़ाया।

"हिश् ! पगला कहीं का ! ऐसा नहीं कहना चाहिये। यह अच्छी बात नहीं।"

मुन्नू आश्चर्य से स्तब्ध रह गया। यह अच्छी बात क्यों

नहीं ? वहाँ उसे अच्छे-अच्छे भोजन मिलेंगे। यहाँ तो कभी-कभी रोटी भी नहीं मिलती।

उसका छोटा-सा मस्तिष्क इसे स्वीकार करने में असमर्थ था। उसने मचलकर कहा—"मा !"

मा ने उसकी ओर देखा।

"मैं वहीं जाऊँगा, मा !"

"चुप रह, बदमाश !"—मा ने उसे डाँट दिया। मुन्नू के कोमल हृदय को एक ठेस लगी। वह चुपचाप गुदड़ी से लिपटकर सोने चला।

मा ने रोका—"खा ले।"

"मैं नहीं खाऊँगा—मैं तुमसे नहीं बोलता। तुम मुझे वहाँ जाने से रोकती हो।"

मा की आँखें उसके भोलेपन पर डबडबा आईं। बोली—"बेटा, बिना मरे वहाँ कोई नहीं जाता। ईश्वर न करे, मुझे ऐसा दिन देखने को मिले।"—और आँचल से उसने अपने आँसू पोंछ लिये।

मुन्नू फिर कुछ सोच में पड गया, और इस बार उत्साह से बोला—"तब वह सात घोड़ोंवाला राजकुमार कैसे गया ?"

मा खिलखिला उठी—"पगला ! उसके पास सात घोड़े और उड़नेवाले पंख जो थे !"

इस उत्तर से मुन्नू का हृदय बैठ गया। उसके पास सात घोड़े और उड़नेवाले पंख कहाँ हैं? यदि वह कहीं से इन्हें पा सकता !

मा ने डाँटा—"क्या सोचता है रे ? तू खायगा या नहीं ? रोटी ठंढी हो रही है। अब तेरे बाबूजी भी आयँगे।"

अनमना और खिन्न-सा मुन्नू खाने बैठा। किन्तु उसका हृदय कहीं और था। रोटी को कुतरता रहा।

मा ने स्नेह से कहा—जब तू बड़ा हो जाना, बेटा, तब सात घोड़े और उड़नेवाले पंख खरीद लेना; और फिर राजकन्या से व्याह भी कर लेना। वहाँ एक दूसरी राजकन्या जयमाल लिये बैठी रहेगी। क्यों, ठीक है न, रे मुन्नू ?"

मुन्नू को मा की यह बात जँचती-सी मालूम पड़ी। छिः ! वह किसी से भीख क्यों माँगेगा ? जब वह बड़ा हो जायगा, खुद ही खरीद लेगा। और, इस खुशी में मुन्नू को उस रात बड़ी अच्छी नींद आई।

अब भी मुन्नू उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा है—जब वह सात घोड़ोंवाले राजकुमार के बराबर होकर राजकन्या का जयमाल पहनेगा।

उतरा हुआ मद

बड़े घर में पैदा होने पर भी अरुण ने हृदय पाया था। सुहृदयता, नम्रता एवं परदुःखकातरता उसमें कूट-कूटकर भरी थी। लोग आश्चर्य करते, पिता इतना क्रूर और लड़का इतना सुशील ! ज्यों-ज्यों अरुण की उम्र बढ़ती गई त्यों-त्यों धन, प्रभुता एवं अभिमान से उसे घृणा होने लगी।

अरुण में एक अजीब आकर्षण था। उसके चेहरे पर पवित्रता की लहरें नाचा करतीं और उसका मुखमंडल सदा प्रदीप्त रहता। जिस समय उसके अधरों पर हँसी फूट पड़ती थी, उस समय उस सच्चरित्र बालक के चेहरे से आभा की किरणें निकल पड़तीं। देखनेवाले एकटक उसकी ओर देखते रह जाते। ऐसा था वह अनुपम बालक अरुण !

और उसके पिता ?

विधाता ने उन्हें न जाने कैसी विलक्षण बुद्धि दी थी। अपनी जमींदारी के असामियों पर मनमाना जुल्म करते।

शायद, इसी में उन्हें आनन्द मिलता था। सदैव मद में चूर, अहंकार से फूले हुए। वे और मनुष्यों को अपनेसे छोटा समझते और बात-बात में झिड़क देते।

लोग दाँतों उँगली काटते—"अहंकार के कँटीले बाग में इतना सुन्दर गुलाब का फूल?"

किन्तु, अरुण की माता साक्षात् देवी थी। पूजा-पाठ में समय बितानेवाली, सीधी-सादी और देहात की वह एक ऐसी भोली महिला थी जिसके आगे पति के कल्याण से बढ़कर कोई दूसरी चीज ही नहीं।

वह हमेशा अपने पति से डरती रहती थी। अकारण ही वे नशे में उसे पीटने लगते थे; किन्तु वह इसका कुछ भी प्रतिकार न करती थी—भला, वह कर भी क्या सकती थी? अरुण के जन्म के एक ही मास बाद वह अभागिन चल बसी थी, इसलिये अरुण मातृत्व की स्नेह-गोद में न पल सका था।

दिन बीत रहे थे।

एक दिन अरुण के पिता ने कहा—"अरुण, अब तो तुम इंट्रेंस पास कर चुके। अब अधिक पढ़ने की जरूरत ही क्या?"

अरुण चौंका। नम्र स्वर में उसने उत्तर दिया—"क्यों पिताजी?"

"क्यों क्या ? अधिक पढ़ने से कोई लाभ नहीं।"

"लाभ नहीं ? हमारी असली पढ़ाई तो आगे है। यदि सचमुच पढ़ने के खयाल से पढ़ा जाय तो हमें बहुत लाभ हो सकता है।"

"हाँ जी, मैं खूब समझता हूँ। इतना ही पढ़कर तो तुमने ये सब खुराफात मचा रक्खी है, आगे पढ़कर न जाने क्या करोगे?"

"खुराफात ! कैसी खुराफात, बाबूजी ?"

"हूँ !" अरुण के पिता मुँह बनाकर बोले—"मानों समझते ही नहीं हो ? कल तुमने बिरजू से मालगुजारी क्यों नहीं वसूल होने दी ? हमारे लठैतों को क्यों डाँटकर भगा दिया ?"

"बाबूजी, बेचारे बिरजू बूढ़े के पास अन्न है ही क्या ? मैं उसकी झोपड़ी में जाकर खुद देख आया हूँ। वह गरीब किसी तरह दिन काट रहा है। दो शाम से उसके यहाँ चूल्हा न जला है। फिर बेचारे की झोपड़ी पर कब्जा करने से फायदा ?"

"बस, रहने दो।"—बीच में ही टोककर अरुण के पिता बोले—"मैं तुम्हारा लेक्चर नहीं सुनना चाहता। अभी कल के छोकड़े हो, जमींदारी का हाल क्या जानोगे ? इंट्रेंस पासकर लिया तो अपनेको बड़ा काबिल समझने लगे ? एक मैं हूँ जो सिर्फ लोअर फेल होकर भी........।"

अरुण शान्त भाव से सिर झुकाये खड़ा था।

"तो तुमने क्या निश्चय किया?"

"मैं आगे पढ़ूँगा, पिताजी!"

"नालायक!"—अरुण के क्रोधी पिता उन्मत्त हो उठे—"मेरी बात काटता है?"

"किन्तु, आपकी यह बात ठीक नहीं है, पिताजी!"

"मेरी बात ठीक नहीं है?"—अग्नि में मानों घी पड़ गया—"निकल, जा यहाँ से चांडाल! तुम्हारी करतूतें मुझे अच्छी तरह मालूम हैं। समझूँगा मुझे सन्तान हुई ही नहीं।"

और, डबडबाई आँखों से अरुण बाहर जा रहा था।

शहर में आकर अरुण ने अपने पैरों खड़े होने का निश्चय कर लिया। कुछ ट्यूशन कर वह कालेज का खर्च बहुत ही किफ़ायत से चलाने लगा। सारा काम अपने हाथों करता। धीरे-धीरे वह कठिन परिश्रमी बन गया।

क्रोधी पिता ने कुछ भी परवा न की। मानों यह एक साधारण-सी बात हो।

समय का पंछी पाँच लम्बे वर्षों को पार कर गया।

इस बीच दुनिया में बहुत-से उलट-फेर हुए। दुर्भाग्य की बात! अरुण के क्रोधी पिता और पास के एक जमींदार में कुछ

चखचुख हो गई। वह जमींदार भी इनसे किसी हालत में कुछ कम न था; बल्कि कई बातों में बढ़ा-चढ़ा था। मुकदमेबाजी शुरू हुई। रुपये पानी की तरह बहाये जाने लगे। एक वर्ष, दो, तीन और इस तरह पूरे चार वर्षों तक दोनों में घनघोर मुकदमेबाजी हुई। जमींदारी बिकती गई; किन्तु अपनी जिद से अरुण के पिता एक डग भी पीछे न हटे। फल यह हुआ कि सारा धन मुकदमेबाजी में स्वाहा हो गया! और, एक दिन हाईकोर्ट से अन्तिम निर्णय भी हो गया।

अरुण के पिता बुरी तरह हारे।

अरुण बी० एस-सी० पास करके इंजीनियर के पद पर नियुक्त हुआ। शहर में उसकी काफी इज्जत थी और उसकी बातों का काफी मूल्य था। किन्तु उसकी सुशीलता एवं कर्त्तव्य-परायणता में कुछ भी अन्तर न आया था। लड़कपन के वे गुण अब और विकसित हो गये थे।

अरुण ने अपने पिता की हार की खबर सुनी और यह भी सुना कि उनका वैभव-मद उतर गया है। अब वे एक दूसरे ही आदमी हो गये हैं और बड़ी मुश्किल से अपना जीवन-निर्वाह कर रहे हैं। भावुक अरुण की आँखों में आँसू

छलछला आये और उसी दिन वह शाम की गाड़ी से अपने पिता के निकट पहुँचा।

पिता और पुत्र का यह मिलन कैसा अद्भुत था!

बूढ़े की आँखें सजल हो रही थीं और बच्चों की भाँति वे फूट-फूटकर रो रहे थे।

"मुझे माफ कर दो, अरुण! मैं बड़े अंधकार में था। अब मैंने समझा है, अभिमान बालू की भीत है।"

अरुण आँखें नीची किये हुए शान्त खड़ा था।

"बेटा!"

"बाबूजी!"

और आनन्द से विह्वल हो दोनों गले-गले मिल रहे थे।

हाँ, अब शायद उनका मद उतर गया था।



रतन

रतन को यह अच्छी तरह याद नहीं कि उसके मा-बाप की आकृति कैसी थी। जबसे उसने होश सम्हाले, अपनेको वकील साहब के यहाँ पाया। वह अब किशोरावस्था में कदम रख रहा था; किंतु उसकी बुद्धि में कुछ भी वृद्धि नहीं हुई थी। उसमें हद दर्जे का भोलापन था। न तो कभी किसी ने उसे रोते देखा और न उदास ही। उसकी मालकिन खीजकर जब कभी कहती कि 'रतना दुनिया में सबसे बेवकूफ है' तो वह मुस्कुराकर रह जाता।

माता की एक धुँधली आकृति रतन ने अपनी मोटी अक्ल से बना ली है। एकांत में, जब उसे काम-काज से छुट्टी हो जाती है, अपनी उसी धुँधली आकृति के विषय में रतन सैकड़ों गुत्थियाँ सुलझाता है। सामनेवाले मंदिर के पीछे, जब चाँद आकर झाँकने लगता है, तब उसको खुशी का पारावार नहीं रहता। उसे इच्छा होती है, दौड़कर वह उसे पकड़ ले!

रतन को बहुत-से काम करने पड़ते हैं; झाड़ू देना, किताबों की आलमारियाँ साफ करना, बच्चे को खेलाना और न जाने क्या-क्या ! रतन हमेशा खुश रहता है ; किंतु उस समय उसे बड़ी पीड़ा होती है, जब कोई उसे डाँटता है। वकील साहब तो पूरे गुस्सैल हैं ; बहुत बचा-बचाकर रतन उनके सम्मुख काम करता है। मालकिनजी दयालु हैं और रतन उनके सामने डरता नहीं। वह अपने हृदय से बहुत-से प्रश्न पूछता है—बादल कहाँ जाते हैं ? आदमी मरता क्यों है ? आसमान के ऊपर ही तो भगवान् हैं ? मेरी माँ मुझे छोड़कर क्यों चली गई ? वह आयगी क्यों नहीं ?

रतन को बड़ी इच्छा होती है कि वह किसी को मा कहे। जब किसी को वह 'अम्मा' कहते हुए सुनता है, उसकी इच्छा बलवती हो उठती है। उसे यह भी चाह होती है कि उसकी मा उसे आँचल में छिपाकर लोरियाँ सुनाये ! किंतु, वह तो अभागा है ; बे मा-बाप का बालक !

एक दिन सपने में अपनी मा को उसने देखा था। वह धुँधली मूर्त्ति सपने में कुछ प्रखर हो गई थी। उसकी मा उसके सिर पर हाथ रक्खे मानों कह रही थी—'रतन, तू तो बड़ा कुम्हला गया है बेटा'·····देख तो, मैं आई हूँ···।'

रतन का दिल खुशी से मानों भर गया था। उसका कंठ हर्ष से अवरुद्ध था। वह एकटक अपनी मा को देखता रह गया था। और, मा उसके सिर पर हाथ फेरे जा रही थी। हल्के, आनंद भरे स्वर में वह पुकार उठा था---'मा······ओ अम्मा ?' और उसको नींद टूट गई। मारे डर के स्तंभित हो उठा।···कहाँ है उसकी मा···वह सफेद रंग की साड़ी ? आँखें मींच-मींचकर उसने देखा---घोर अंधकार और झिंगुर की बोली के सिवा कहीं कुछ न था ! मुँह ढँककर रतन सिसक उठा था।

रतन के दिन कभी अच्छे थे, यह बात रतन अपने पड़ोसियों से सुन चुका है। उसके पिता एक लोहे के कारखाने में फोरमैन का काम करते थे और उससे काफी रुपये कमा लेते थे। किंतु, शराब पीने की बुरी लत के कारण वे रुपये जमा न कर सके। वे जब मरे, तब रतन की अवस्था प्रायः ढाई वर्ष की थी। उनके मरने के बाद रतन की मा वकील साहब के यहाँ काम करने लगी। रतन की मा जब मरी, उस समय रतन सात वर्ष का था। मरते समय रतन की अभागिन मा ने वकील साहब की पत्नी से यह प्रार्थना की थी कि रतन को वे अपने आश्रय में रक्खें; फलतः रतन उन्हीं के यहाँ रहते-रहते अब तेरह वर्ष का हो चला था।

किंतु, रतन का लड़कपन अभी छूटा न था। जब कभी उसके दिल में जरा भी चोट आती, उसे मा की याद सता जाती। तब उसे वही दृश्य याद आता, जब लोग उसकी मा को श्मशान ले जा रहे थे और वह भी साथ था। एक दिन रतन ने डरते-डरते अपने एक मुहल्ले के समवयस्क गरीब लड़के से पूछा था—'हाँ रे विशू, मर कर आदमी कहाँ जाता है?'

विशू खिलखिलाकर हँस पड़ा था, मानों उसके अज्ञान पर उसे तरस आ गया हो! 'तू इतना भी नहीं जानता' रे रतन?'

रतन ने वेवकूफ-सा सिर हिला दिया।

गंभीर होकर विशू ने कहा—'देख, यह जो आसमान है, उसके भीतर एक बहुत बड़ा नगर है। जितने आदमी मरते हैं, सब पहले वहीं जाते हैं, फिर भगवान् जहाँ चाहते हैं, वहाँ उन्हें भेज देते हैं।'

रतन ने फिर चौंककर पूछा—'मरे आदमी से फिर भेंट नहीं होती?'

'होती क्यों नहीं! वे रोज रात में सबको देखने आते हैं।'

रतन इन सब रहस्यभरी बातों को अपनी मोटी अक्ल में घुसाने का असफल प्रयत्न करता।

इन दिनों रतन को बहुत काम करना पड़ रहा है; 'बड़े

वाबू' कॉलेज की छुट्टी में घर आये हैं न! आज रतन की तबी-यत दोपहर से ही खराब है; सिर में दर्द है और देह मानों जकड़ी जा रही है। शाम को तबीयत कुछ और ज्यादा बिगड़ गई और वह एक अँधेरे कोने में पड़ रहा।

ग्यारह बजे के करीब बड़े बाबू आये। वे आज सिनेमा देखने गये थे और उसपर एक-दो पेग अँगरेजी शराब भी मित्रों की मंडली में चढ़ा आये थे। उन्होंने लड़खड़ाते स्वर में चिल्ला-कर कहा—'क्यों रे रतना, आज बिछावन क्यों नहीं बिछाया?' किंतु, किसी ने उत्तर न दिया!

बड़े बाबू का पारा चढ़ गया; रतन जहाँ सोता था, वहाँ जाकर देखा, वह औंधे मुँह लेटा है!

'अरे रतना?'

कड़ी अवाज से रतन की नींद टूटी। वह कराहते हुए बोला—'क्या है, बाबू?'

'और उलटे तू मुझी से पूछता है' बदमाश...।'

'बाबू, आज मेरी तबीयत खराब है...।'

'तबीयत खराब? झूठा कहीं का...आजकल तू बहाना सीख गया है...।'

'नहीं बाबू... मैं सच कहता हूँ...।'

किंतु रतन के जवाव देने के पहले ही वूट की चार-पाँच जबरदस्त ठोकरें लगीं, वड़े बाबू चल दिये।

वूट की चोट बेतरह बैठी ; रतन के हृदय पर भी गहरी चोट पड़ी। उसका भावुक, छोटा-सा दिल मा के लिये तड़प उठा; मानों वह हाथ पसारकर कह रहा था—'मा'' , ओ अम्मा'' मैं भो तुम्हारे पास आऊँगा''मेरा मन यहाँ नहीं लगता।'

रात-भर रतन कड़े बुखार और बेहोशी में बुदबुदाता रहा। सवेरे, जब मालकिन उधर से गईं, तब उन्हें रतन की सिकुड़ी हुई लाश मिली!



हरिया

१.

लड़का अभागा मालूम पड़ता था। उसकी उम्र मुश्किल से छः वर्ष की होगी। आँखों से कातरता और भोलापन झाँक रहा था। बाल बेतरतीब बढ़ गये थे। कमीज फटी और गन्दी थी—वह किसी दयालु दानी की दी हुई मालूम पड़ती थी; उसके बटन नदारद थे और उसकी लम्बाई ही यह साफ बतला रही थी कि यह उस उम्र के लड़के की कमीज नहीं। उसके हाथ में आलमुनियम की एक टूटी थाली थी, जिसपर मैल जमी हुई थी और वह चिपटी हो चली थी। मकान के दरवाजे पर आकर उसने पुकारा—"कुछ मिल जाय, बाबू!"

दो-चार बार आवाज देने के साथ ही एक आदमी बाहर आया और डपटकर बोला—"क्या है रे, भाग जा यहाँ से।"

"नहीं बाबू, एक पैसा......!"

"जाता है या नहीं...?"

आवाज सुनकर लड़का सहमी आँखों से देखने लगा और

चलने को तैयार हुआ ; इतने में ही किवाड़ के पीछे से आवाज आई—"ठहरो जरा।"

लड़का ठिठककर खड़ा हो गया।

स्त्री के मुख पर दया के भाव झलक रहे थे। बोली—"व्यर्थ बेचारे को क्यों डाँट रहे हो, जी ? देखते नहीं, कैसा फूल-सा लड़का है !"

इशारे से उसे बुलाकर, प्यार के शब्दों में, उसने पूछा—"क्या नाम है तेरा, बेटा ?"

लड़के ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को फैलाकर कहा—"हरिया...।"

स्त्री के मुख पर वात्सल्य की रेखा दीख पड़ी। बोली—"तुम्हारे मा-बाप हैं ?"

लड़के ने करुणा-भरी आँखें उठाकर कहा—"ना...।"

"कोई नहीं है ?"

"नहीं।"

"कहाँ गये ?"

"नहीं मालूम।"

"तू कहाँ रहता है, रे ?"

"पेड़ के नीचे।"

"पेड़ के नीचे ?"—स्त्री का कलेजा धक् रह गया।

"तब और कहाँ रहूँ ?"—लड़के की मुद्रा उदास हो गई !

कुछ क्षणों तक चुप रहने के बाद स्त्री ने कहा–"हरिया, तू मेरे यहाँ रहेगा ?"

"आपके यहाँ ? आप रक्खेंगी ?"—लड़के का चेहरा खुशी से झलक उठा।

"हाँ, आज से तू मेरे यहाँ रह। आज से तू भीख न माँग; मैं तुझे खाने को दूँगी ; पढ़ाऊँगी; पढ़ाकर, डिप्टी बनाऊँगी ! क्यों रे हरिया, तू मुझे भूलेगा तो नहीं ?"

हरिया अवाक् खड़ा रह गया।

२.

हरिया ने भीख माँगना छोड़ दिया। वह अब वहीं रहने लगा। किन्तु उस दयालु स्त्री के पति रजनी बाबू को यह पसन्द न आया। उन्होंने भौंहें सिकोड़कर कहा—"ये सब क्या जंजाल मोल ले लेती हो ? जिसके-तिसके आवारे लड़के को घर में इस तरह रख लेना क्या अच्छा है ? तुम देख लेना कमला, बेटा पक्का चोर निकलेगा।"

"अरे......नहीं-नहीं"—कमला ने बीच में टोककर कहा

—"कैसी बातें करते हो, जी ? यह नन्हा-सा बालक चोर क्यों होने लगा ?"

रजनी बाबू अपनी स्त्री को बहुत प्यार करते थे, अतः वे चुप रह गये ।

कमला के अबतक कोई सन्तान नहीं थी ; इसलिये मातृत्व की प्यास वह इस हरिया से ही बुझाने लगी । हरिया भी इस अपरिचिता स्नेहमयी मातृमूर्त्ति से घुलमिल गया ।

कमला ने प्यार से एक दिन उसे चूमकर कहा—"हरि, जानते हो, मैं कौन हूँ ?"

हरिया कुतूहल-भरी आँखों से कमला की ओर देखने लगा ।

"मैं तेरी मा हूँ, रे !"

"मेरी मा ?"—हरिया को बड़ा आश्चर्य हो रहा था ।

"क्यों, तुझे विश्वास नहीं होता ?"

"किन्तु मैंने सुना है, मेरी मा कब को मर चुकी।"

"नहीं रे, मैं मरी नहीं, तुझे छोड़कर भाग गई थी । अब फिर मैं तुझे पा गई हूँ ।"

इसी तरह स्नेह के अंचल में हरिया को यहाँ पलते कुछ महीने हो गये । एक दिन उसने सुना—उसे एक छोटा भाई हुआ है ! जिस दिन उसे अपने छोटे भाई को देखने का मौका

मिला, उसकी खुशी का अन्त न था। एक नन्हा-सा बालक, झूले पर किलकारियाँ मारता, हाथ-पैर फेंक रहा था! कमला ने हँसकर कहा—"देख तो हरिया, तेरा छोटा भाई कैसा है?"

हरिया ने खुशी से उछलकर कहा—"बड़ा अच्छा है अम्मा, दो न मैं इसे खेलाऊँ।"

कमला ने हँसी रोककर पूछा—"हरि, तुम अपने छोटे भाई को हमेशा प्यार करोगे?"

"हाँ अम्मा।"—बच्चे के नन्हे कोमल हाथ को चूमता हुआ हरिया बोला।

२.

बच्चे का नाम पड़ा अविनाश। वह शीघ्रता से बढ़ने लगा। हरिया उसे आठों पहर गोद में लिये फिरता। बच्चा उससे बहुत हिलमिल गया।

धीरे-धीरे दो-ढाई वर्ष बीत गये। हरिया की उम्र अब नौ साल की हो चली थी।

किन्तु रजनी बाबू के दिल में हरिया के लिये अब भी कटुता भरी थी। वे नहीं चाहते थे कि हरिया उनके घर में रहे। शायद उसे अमंगल का चिह्न मानते थे!

एक दिन बड़ी दुःखद घटना हो गई। अविनाश का सोने का हार गायब हो गया। घर-भर में कुहराम मच गया।

रजनी बाबू ने हरिया को बुलाकर पूछा—"बता हरिया, हार कहाँ रक्खा है ?"

"हार ! कैसा हार ?"—हरिया को आश्चर्य हो रहा था।

"बड़ा भोला-बनता है, पाजी कहीं का, बता हार। तू ही तो उसे गोद में लिये रहता है।"

"किन्तु मैंने हार कब लिया ?"

"यह मैं क्या जानूँ...तुझे बताना ही पड़ेगा......नहीं तो तेरी हड्डी-पसली तोड़ दूँगा। सोने का भूलना अशुभ है।"

हरिया चुप खड़ा था।

"...बताता है ?"

हरिया फिर भी चुप था।

क्रोध में आकर रजनी बाबू ने उसके गाल पर चार-पाँच तमाचे जमा दिये। उसका चेहरा लाल हो उठा। उँगलियों का चिह्न गाल पर साफ दिखलाई पड़ने लगा। उसकी आँखों से आँसू टपटप गिरने लगे। तमतमाये चेहरे से दो-चार लात और जमाकर रजनी बाबू चलते बने।

४.

हरिया-फूट-फूटकर रोने लगा। सचमुच उसे बड़ी सांघातिक चोट लगी थी। अपने ऊपर झूठे इलजाम से उसे और भी पीड़ा हो रही थी।

जब रात का घना अंधकार चारों ओर फैल गया, हरिया ने अपनी दो पुरानी चीजें निकालीं ; एक थी उसकी फटी कमीज और दूसरी थी वही आलमुनियम की टूटी थाली ! उसी फटी कमीज को पहनकर और वही थाली हाथ में लेकर वह उस भयंकर अंधकार में समा गया।

सवेरे हरिया का पता न था !

हरिया के चले जाने के बाद ही एकाएक अविनाश को बुखार चढ़ आया। उसने रोते-रोते हरिया के लिये जमीन-आसमान एक कर दिया !

डाक्टर-पर-डाक्टर आने लगे। धनी मा-बाप का एकलौता लड़का ! किन्तु अविनाश का ज्वर न उतरा, बढ़ता ही गया।

उस दिन कमला अपने सन्दूक से एक चीज निकालते समय धक् रह गई। उसमें अविनाश का सुनहला हार पड़ा था ! उसने क्षीण स्वर में अपने पति को पुकारा। हार देखकर रजनी बाबू के पैरों के नीचे से मानों पृथ्वी खिसक गई। अपनी नादानी पर आज जीवन में पहली बार उन्हें घोर पश्चात्ताप हुआ। कमला ने आँखों में आँसू भरकर कहा—"अविनाश को यदि बचाना है, तो 'हरि' को ढूँढ़ो। तुमने उसको समझने में गलती की है। वह बड़ा सुलक्षण था !"

५.

रजनी बाबू ने हरिया को ढूँढ़ने के लिये बहुत उपाय किये। वे स्वयं धूप और वर्षा में शहर के कोने-कोने में उसे ढूँढ़ने जाते। इधर अविनाश की तबीयत और भी खराब होती गई।

अचानक एक दिन एक पेड़ के नीचे उन्होंने हरिया को बैठा पाया। उससे लिपटकर रूँधे गले से रजनी बाबू ने कहा— "मुझे माफ कर दे हरिया···मैंने बड़ा पाप किया·····चल देख, तेरा अविनाश तेरे बिना बुखार में छटपटाकर मर रहा है।"

हरिया को जैसे बड़े जोरों का धक्का लगा। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसने कोई बड़ा अनर्थ और पाप कर डाला है। उसी क्षण वह अविनाश को देखने चला।

हरिया को सामने देखकर अविनाश की आँखें चमक उठीं। आज जाने कितने दिन बाद उसके शुष्क अधरों पर मुस्कुराहट दौड़ी! वह तुतली भाषा में पुकार उठा—"भ··इ··या?"

कमला और रजनी बाबू के आनन्द का पारावार न था। कमला ने अपने पति के कान में अस्फुट शब्दों में कहा—देखा ·····मैंने कहा न था कि तुमने मेरे 'हरि' को नहीं पहचाना·····।"

उधर हरिया के आँसू रुकते ही न थे!

अग्रदूत

(अ)

संसार का कण-कण सजीव हो उठा ! नववधू की अस्फुट हँसी की तरह भारत के अधरों पर हँसी बिखर आई !

विश्व का वह अग्रदूत प्रथम-प्रथम कपिलवस्तु के राजमहल में रो उठा !

विश्व के उस अद्भुत जादूगर ने एक क्रांति की आग सुलगाई।

हिल उठा विश्व—और उस शान्त अग्रदूत ने नवयुग के संदेश की मन्त्रणा फूँकी !

उसके स्वर में जादू था; आँखों में एक सम्मोहक शक्ति थी, और अधरों पर थी वही चिर-परिचित मुस्कान !

दुनिया इस अग्रदूत को भगवान् बुद्ध कहती है !

(ब)

कितनी सुन्दर ! स्वर्ग की उर्वशी-सी सुकुमार ! बड़ी-बड़ी फैली हुई आँखें। चेहरे पर भोलेपन की नाचती हुई रेखाएँ।

बेसुध, नींद में उलझी, दूर के किसी स्वर्गीय स्वप्न में विभोर थी वह यशोधरा ! बगल में फूल-सा बच्चा सोया था। आँसू के चिह्न अभी भी उसके कपोलों पर वर्तमान थे, जैसे अभी वह मचल कर और रोकर सोया हो।

अँधियारी रात !!

पैर काँप रहे थे ! सिद्धार्थ ने देखा ! हृदय से आवाज आई—'कितना सुन्दर संसार !'

'मिथ्या' !—हृदय की दूसरी अन्तरात्मा टकराई।

'मिथ्या' ?—ज्ञान का प्यासा सिद्धार्थ जैसे सपने से जाग उठा हो। एक दृश्य आया—जलती हुई चिता—ऐ ! उसका नन्हा-सा शिशु !......चिता की लपटें आकाश को चूम रही हैं, और सामने की बहती हुई नदी में उसका प्रतिबिम्ब चमक उठा है और......कुछ ही क्षणों बाद—राख का एक ढेर !

'उफ !'—सिद्धार्थ ने आँखें बन्द कर लीं और लड़खड़ाते पैरों से बढ़ चला—एक अज्ञात दिशा की ओर !

कैसा साहसी अग्रदूत था वह !

(ह)

सैकड़ों वर्ष बीत गये।

आज के युग में भारत ने हमें एक और अग्रदूत दिया है।

विश्व का वह अग्रदूत !

क्रान्ति का वह पुजारी !!

'स्फटिक मणि की तरह चमकता हुआ' वह 'मोती' का अनमोल 'जवाहर' !

दुनिया आश्चर्य्य से देखती है—इस अभागे भारत में स्वर्ग का यह देवता; अग्रदूत बन कैसे चला आया ?

चिलचिलाती हुई धूप में, जब अधभूखे, अधनंगे किसान और मजदूर उसकी ओर आशा-भरे नेत्रों से देखते हैं तब इस अग्रदूत का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता है !

(त)

वैभव का यह राजकुमार !

आज यह अग्रदूत बढ़ता जा रहा है ! अपने ध्येय को पाने, उसे अपनाने के लिये वह एक क्षण बिना रुके चलता जा रहा है।

उसके पैरों में शक्ति है; हृदय से निराशाओं का तूफान टकराता है, किन्तु वह इतना सख्त है कि निराशाएँ हार मानती हैं !

युग और मानवता विश्व के इस क्रान्तिकारी अग्रदूत की उत्सुक आँखों से प्रतीक्षा कर रही है !

अधूरी कहानी

छोटी-सी झोपड़ी थी; मैली, गन्दी और किसी उदास जर्जर विधवा-सी करुण !

बहुत दिनों की बात है—शायद सृष्टि के कुछ ही दिन बाद !

उसके पास ही एक अट्टालिका थी, इठलाती-ललचाती और आकाश से होड़ लेती !

एक दिन उस झोपड़ी ने कहा—'सुनती हो, बहन ?'

अट्टालिका झूमर-सी बल खाकर बोल उठी—'क्या है ?'

झोपड़ी स्तब्ध रह गई ! अट्टालिका कितनी सुन्दर लग रही थी ! अधरों पर लालिमा, आँखों में छलकती वासना और अपनी सुमधुर रुनझुन से वह प्रदीप्त थी !

अट्टालिका विहँस गई, मुस्कुरा उठी अपने इस नवयौवन पर ! और वह अभागिन झोपड़ी अपनी भूली बातों को कुरेदने लगी।······अपना सुहाग—वह लता-पुष्पों से आच्छादित उसका यौवन !······फिर वह उजड़ा वसन्त······वह लुटा हुआ सुहाग······!

अट्टालिका ने अधरों पर गर्व लाकर कहा—'क्या कहती है ? बोल न ?'

विचारी झोपड़ी के रहे-सहे अरमान चूर हो गये........ कहने को उल्लास से जो उसने मुँह खोला था, खुला ही रह गया !

अट्टालिका खीझ उठी—'मैं जाती हूँ। मुझे काम है।'

और, वह चली गई !

× × × ×

बहुत दिन हो गये। सृष्टि-पर-सृष्टि बन गई। किन्तु वे दोनों बहनें ज्यों-की-त्यों थीं। अट्टालिका उसी तरह मुँह फुलाये अपने कामों में जुटी थी और झोपड़ी अभागिन अपनी छोटी बहन के स्वागत में हृदय की आहें बिछा प्रतीक्षा कर रही थी।

एक दिन उसने देखा, वह उसकी ओर आ रही है !

वह मचल उठी। युगों की आराधना जैसे आज पूरी हुई।

अट्टालिका ने कहा—'ले, मैं तो आ गई। जो कहना हो, कह'

झोपड़ी ने कहा—"........तुम एक दिन यहाँ ठहर न सकोगी, बहन ! इतने दिन पर आई हो जो.....।'

अट्टालिका फिर खीझ उठी—'यह कहाँ का पचड़ा तूने ले रक्खा......जो कहना हो, कह न !' .....

झोपड़ी ने कहा—'बहन, मैं तुम्हें अपनी एक कहानी कहूँगी।'

'कहानी ?'—अट्टालिका जैसे चौंक उठी हो—'''अच्छा जल्द सुना।'

झोपड़ी ने शुरू किया—'बादलों के देश का राजकुमार एक बार मेरे द्वार पर आया। तुम जानती हो बहन, मेरे पास क्या रक्खा था जो उसका स्वागत करती''''''?'

अट्टालिका ने छेड़ते हुए कहा—'तू हमेशा रोती ही रहती है ?''''''जब देखूँ, तेरी आँखों में बादल ! न जाने तू कैसी कुलच्छना है''''''!'

झोपड़ी जैसे अब रोई—तब रोई !

'कुछ बोलेगी या फिर वही राग शुरू करेगी ? तेरी यह कहानी मुझे तनिक भी अच्छी नहीं लगती''''''कहानी ही सुनानी है तो तेरे पास कहने को सिर्फ यही कहानी है ?'

झोपड़ी क्या उत्तर दे ? वह चुप थी।

'बोलती है ?'

झोपड़ी फिर भी मौन !

'बोल भी ?'

'.........?'

'मर कलमुँही'—उसे ढकेल, क्रोध से काँपती हुई अट्टालिका चल पड़ी !

पीड़ितों का पैगम्बर—कार्ल मार्क्स

उसके हृदय में सदा वेदना और मानवता की पुकार सुनाई देती। अपने चारों ओर वह पाता दुःख, कातरता और अन्धकार ! पिता ने उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ की थीं, क्योंकि उसका पुत्र बड़ा ही विद्वान् और मेधावी निकला था। किन्तु उसकी वे आशाएँ कभी भी पूरी नहीं हुईं। उसके पुत्र के हृदय में एक दूसरा ही ज्वार आ चुका था। उसके सामने सुन्दर भविष्य था; युनिवर्सिटी की 'डाक्टर' की उपाधि, उच्च खान्दान; और सामने आनन्द की विहँसती हुई लहरें इठला रही थीं।

किन्तु, इसपर एक दूसरा ही रंग चढ़ चुका था। वह सदा अपने में खोया रहता। उसकी मुद्रा सदा गभीर रहती, मानों वह किसी गहरे प्रश्न को सुलझा रहा है !

हाँ, उसने मानवता की चीख सुनी थी।

× × ×

यौवन उसे बुला रहा था। संसार का ऐश्वर्य उसे लुभा रहा था। बर्लिन और बोन की युनिवर्सिटियों से उसने विज्ञान, दर्शन और न्यायशास्त्र की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। अपने यौवन के उस खिलते दिनों में वह प्रेम और रोमांस से भरी कविताएँ और कहानियाँ लिखने लगा था। किन्तु युगधर्म की पुकार ने उसकी अन्तरात्मा को कोसा—'क्या वह इसी कल्पना के राज्य में उड़कर जनता को कुछ दे सकेगा? जो आज करोड़ों की संख्या में भाग्य, अज्ञान और कायरता से दबे जा रहे हैं, क्या उनके बन्धन काट सकेगा?'

वह उस स्वप्न-राज्य से उतरा। दुनिया की यह ठोस भूमि कितनी पथरीली थी? कहाँ थे उसके गुलाब, ओस की बूँदें, अधरों की लालिमा और हृदय का उच्छ्वास?

चोट खाये हुए क्रुद्ध सर्प की भाँति उसका हृदय विद्रोह कर उठा।

× × +

लोगों ने पहली बार सुना—"Workers of world unite!" (दुनिया के मजदूरो, एक हो जाओ)।

क्रांति का बिगुल बजा। पूँजीपति वर्ग शेर की तरह लाल

आँखें कर उसपर गुर्राया और शोषित वर्ग की आँखों ने, दूर, एक प्रकाश की तीक्ष्ण किरण देखी !

हाँ, उसने देखा कि यह श्रेणीभेद ही दुनिया के सारे अनर्थों की जड़ है। एक ओर मुट्ठी-भर शोषक हैं, दूसरी ओर करोड़ों शोषित। एक दल अपने जवाहरात और खजानों की रक्षा के लिये सैकड़ों नौकर रखता है और दूसरे दल को सूखी रोटी भी मुहाल है। एक दल मुफ्त में बैठा-बैठा संसार के सारे ऐश्वर्यों का मजा लूटता है और दूसरा दल भूख की ज्वाला से हताश हो मृत्यु चाहता है।

उसने अज्ञान में डूबी हुई जनता को बतलाया कि इस श्रेणीभेद ही के कारण आज तुम इतने पीले, दुःखी और रोगग्रस्त हो। प्रकृति की प्रत्येक चीज पर प्रत्येक मनुष्य का समान अधिकार है। आलसी और निकम्मे आदमी दुनिया के लिये अभिशाप हैं। इस अप्राकृतिक श्रेणीभेद से ही सारी दुनिया दुःखी है; अतएव व्यक्तिगत सम्पत्ति और पूँजीवादी प्रणाली का अन्त होना जरूरी है।

\+ \+ \+

किन्तु, क्या आप समझते हैं कि इन शोषकों के चंगुल से—जिसके विरुद्ध वह लगातार आग उगलता जा रहा था—बच पाया होगा?

जी नहीं, उस महर्षि पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा।

उस समय की जर्मन-सरकार ने उसे अपने राज्य से निर्वासित कर दिया। अपनी स्त्री और बच्चों के साथ वह पेरिस आया। किन्तु शायद वह यूरोप की सारी सरकारों की आँखों का काँटा बन गया था; उसने इन तोंदवाले धनिकों के विरुद्ध नारा जो लगाया था! पेरिस की सरकार ने भी उसे निकल जाने का हुक्म दिया।

वह हारकर लन्दन पहुँचा। उस समय वह दुनिया में सर्वथा असहाय था। दरिद्रता उसके परिवार में पैर जमाये बैठी थी।

यहीं पर उसका चौथा पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु जाड़े की ठिठुरन और पैसों के अभाव से उसे यह बच्चा तुरत ही खो देना पड़ा!

विश्व का यह महापुरुष उन दिनों भूख की ज्वाला दबाने और शीत से बचने के लिये, ब्रिटिश म्युजियम में बैठा-बैठा, किताबों का अध्ययन करते हुए सारा दिन बिता देता था।

उसे प्रलोभनों पर प्रलोभन मिले। जर्मनी की सरकार ने उसे बड़े-बड़े ओहदे देने का वादा किया, यहाँ तक कि मन्त्रिमण्डल में भी ले लेने तक का प्रलोभन दिलाया गया, किन्तु वह महर्षि टस-से-मस न हुआ।

वह तो संसार के गरीबों में क्रांति करने का दृढ़ सङ्कल्प ठाने था। फिर भला, वह उन्हीं पूँजीवाद के सिद्धांतों में, जिनका वह नाश चाहता था, क्यों कर मिलने जाता ?

उसके संदेश जादू की तरह विश्व के कोने-कोने में फैल रहे थे—'ऐ दुनिया के शोषितो ! जागो और एकता करो। तुम्हें कुछ भी खोना नहीं है, केवल पराधीनता की जंजीरें तोड़नी हैं। इन जंजीरों को तोड़ डालो, और संसार तुम्हारा है।'

× × ×

आजीवन वह इस कठिन युद्ध में लगा रहा। उसने पीड़ितों को एक आवाज दी; और दुनिया के सारे मजदूरों ने उसके इस आह्वान को सुना और समझा। उसकी लिखी हुई कैपिटल, प्राइस, वेल्यू और प्रोफिट (मूल्य, उपयोग और लाभ) आदि अनेकों पुस्तकों और मैनिफेस्टों ने सारे संसार में अपनी मौलिकता के कारण हलचल मचा दी।

किन्तु उसके अंत तक का जीवन बड़ा ही हृदयस्पर्शी रहा। जब उसकी प्यारी बेटी फ्रांसिसी भी दवा के अभाव में मर गई; उस समय उसके पास कफन तक के पैसे नहीं थे !

सोचिये तो, नियति का यह व्यंग्य कितना तीखा रहा होगा ?

× × ×

आज, जब हम दुनिया की इस प्रगति को देखते हैं, तब हमारी आँखों से दो बूँद आँसू उस महात्मा कार्ल मार्क्स की याद में बरबस ढुलक ही पड़ते हैं !

किन्तु, क्या उस तपस्वी का बलिदान व्यर्थ ही गया ?

यह तो आजका बदलता हुआ जमाना स्वयं अपनी भाषा में आपको बतला रहा है।

[जन्म ५ मई, १८१८ : मृत्यु १४ मार्च, १८८३]



राष्ट्र के होनहार किशोरों से—

हमारे आज के किशोर भावी राष्ट्र के कर्णधार हैं। वे किसी भी राष्ट्र के भविष्य हैं। उनकी शक्ति एवं उत्साह ही किसी देश का जीवन है।

किन्तु......?

हमारे किशोरों में इतना भय क्यों है? क्यों है यह कायरता हमारे भारतीय किशोरों में?

इतिहास के पन्ने उलटो—तुम पाओगे, इसी शस्य-श्यामला भूमि में व्यास, कृष्ण, राम, गौतम-जैसे किशोर रह चुके हैं!

महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़ो। तुम्हें मालूम हो जायगा कि उनकी किशोरावस्था किन जबरदस्त परिस्थितियों से गुजर चुकी है! उनके जीवन पर कितने तूफान आये; कितनी मुसीबतें आईं; किन्तु वे हिमालय की तरह दृढ और दोपहर के सूर्य की तरह प्रदीप्त रहे!

× × ×

एक दुवला-पतला लड़का चौकन्नी आँखों से ठिठककर खड़ा है। उसके हाथ में एक पुस्तक है। हाथ काँप रहे हैं; पैर लड़खड़ा रहे हैं! किन्तु, साहस कर वह दूकान पर चढ़ ही जाता है।

दूकानदार पूछता है—"क्या है, जी?"

"यह पुस्तक वेचना चाहता हूँ।"—कहकर वह पुस्तक वढ़ा देता है।

दूकानदार उस पुस्तक को उलट-पुलटकर देखने लगता है। पुस्तक चक्रवर्ती की कुञ्जी है—एकदम नई!

"एक रुपया मिल सकता है।"

दो रुपये को नई-नई किताव वह एक रुपये में वेच देता है!

× × ×

जानते हो, वह कौन है?

वह क्षीणकाय किशोर, हिन्दी के औपन्यासिक सम्राट् प्रेमचन्दजी था।

फाके हो रहे थे। पितृ-हीन धनपतराय (प्रेमचन्द) की आर्थिक स्थिति वहुत खराव हो चली थी। घर पर कितने प्राणी; और वेकारी से सताया हुआ एन्ट्रेन्स पास धनपत उस समय असहाय था। यही पुस्तक उसकी अन्तिम पूँजी वच रही थी!

किन्तु...... ?

किन्तु, वह किशोर धनपत परिस्थितियों से डरनेवाला न था। उसके क्षीणकाय शरीर में एक आभा छिपी थी—और थी एक महान् पुरुष बनने की प्रबल उत्कंठा !

आज उसी क्षीणकाय किशोर पर भारत को अभिमान है !

× × ×

और भी......

भारत के सर्वश्रेष्ठ कलाकार श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय का नाम तुम लोगों ने सुना होगा। उनकी लेखनी ने भारत में जो क्रांति उत्पन्न की है, वह भूलने की बात नहीं।

उसी महान् कलाकार की किशोरावस्था अनेक कठिनाइयों से गुजरी है। पिता एकदम गरीब थे। नौ प्राणियों का भरण-पोषण उन्हीं पर निर्भर था।

फलतः वे अपने मामा के यहाँ भागलपुर भेज दिये गये !

किसी तरह किशोर शरत् ने मैट्रिक पास किया; कालेज में नाम लिखाया; और कुछ महीनों बाद एफ० ए० की परीक्षा होनेवाली थी।

किन्तु, शरत् असहाय था। परीक्षा के २०) रुपये फीस न

मिल सके। अन्तिम तिथि चली आई; फीस न जमा हो सका। और......उस शरत् को २०) न रह सकने के कारण सदा के लिये कालेज-जीवन को नमस्कार करना पड़ा !

यह है भारत के सर्वश्रेष्ठ कलाकार की किशोरावस्था की एक कहानी !

× × ×

शायद, तुम समझते होगे कि वह अपने भविष्य से हताश हो गया होगा।

नहीं जी, उसने प्रतिज्ञा कर ली कि वह वीस वर्षों तक खूब अध्ययन करेगा।

और, उसने इस प्रतिज्ञा को निवाहा भी।

तभी तो आज सारा संसार उसे श्रद्धा के साथ फूल चढ़ा रहा है।

× × ×

तो मेरे कहने का तात्पर्य्य यही है कि परिस्थितियों से कभी निराश मत होओ।

नेपोलियन का कथन है कि—'असम्भव शब्द मूर्खों के कोष में है।'

खेलो—खूब उत्साह और लगन के साथ विपत्तियों से खेलो। उनसे डरो नहीं, वरन् अधरों पर हँसी लिये उनसे युद्ध करो।

तब तुम देखोगे—सफलता की जननी अपने शत-शत हाथों से, तुम्हारे गले में जयमाल पहनाने को उत्सुकतापूर्वक बाट जोह रही है।

दरिद्रता के अंचल से—

ब्रीन के सैनिक शिक्षणालय में वह दुबला-पतला लड़का हाल ही में भर्ती हुआ था। दुनिया में प्यार और सुख किस वस्तु का नाम है, इससे वह सर्वथा अनभिज्ञ था। किन्तु उस दुबले-पतले लड़के की आँखों में एक ऐसा तेज था जो सचमुच किसी को भी अनायास ही आकृष्ट कर सकता था। उसकी हरएक चाल में निरालापन था; उसकी हरएक भाव-भंगी में नूतनता भरी थी।

वह एक गरीब का लड़का था। उसके पिता के आठ सन्तानें थीं। पिता थे वकील, किन्तु वकालत चलती नहीं थी। दरिद्रता का बादल इस परिवार पर छाया ही रहता था। और, ऐसे ही गरीब खानदान का वह अनोखा लड़का था।

ब्रीन के सैनिक शिक्षणालय में केवल कुलीन और पूँजी-पतियों के लड़के पढ़ते थे। उन आलसी और निकम्मे लड़कों को अपनी कुलीनता और संपत्ति पर बड़ा अभिमान था। अतः जब वह नवीन क्षीणकाय बालक उस शिक्षणालय में भर्ती

हुआ, उन लड़कों की हँसी का पात्र बन गया। घमंडी लड़के उसे बेवकूफ बनाने लगे; उसपर फब्तियाँ कसने लगे।

तब उस लड़के ने खीझकर अपने पिता के पास निम्न-लिखित चिट्ठी लिखी थी—"बाबूजी, ये लड़के कितने बेशर्म और बेहया हैं! ये सिर्फ धन ही में मुझसे बड़े हैं, वास्तविक योग्यता में मुझसे बहुत नीचे हैं।"

× × ×

जानते हो? बाद में इसी गरीब छोटे लड़के ने एक बार संसार को कँपा दिया था, और संसार विस्मय से विमुग्ध होकर इस अद्भुत एवं प्रतिभावान् व्यक्ति को देखता रह गया था।

यह और कोई नहीं, फ्रांस का अनोखा बहादुर 'नेपोलियन' था! फ्रांस की राज्यक्रांति के बाद इस जादूगर के नाम में एक निरालापन था। इसके व्यक्तित्व में इतना आकर्षण था कि जनता इसे देखकर हर्ष से पागल हो उठती थी।

हाँ जी, यह वही क्षीणकाय गरीब बालक था, जो बाद में अपने साहस और पुरुषार्थ के बल पर फ्रांस का सम्राट् बन बैठा था। सारा यूरप इसके इशारे पर नाचने लगा था और इसकी धाक संसार के कोने-कोने में एक समय फैल गई थी!

× × ×

संसार का इतिहास उलट जाओ; तुम देखोगे कि साहस, पुरुपार्थ एवं आत्मविश्वास ने ही महापुरुष उत्पन्न किये हैं। धन के वल पर दुनिया में कोई भी कीर्त्तिवान् महापुरुप न बन सका।

रूस के 'मैक्सिम गोर्की' का नाम तुमने सुना होगा। वह संसार का एक श्रेष्ठ उपन्यास-लेखक हो गया है। लड़कपन में माता-पिता की मृत्यु से वह असहाय हो गया; अतः जीविका के लिये उसे मोची का काम करना पड़ा—फिर भी उसकी आर्थिक स्थिति बुरी ही रही। वह भर-पेट खाना भी न प्राप्त कर सकता था। एक दिन तो उसने अपने जीवन से ऊबकर आत्महत्या तक करने का निश्चय किया। उसने अपनेपर पिस्तौल चलाई; किन्तु वह मर न सका—घायल होकर रह गया। और, बाद में, समय आने पर यही दरिद्र मोची एक दिन संसार का महान् यशस्वी लेखक हो गया।

आज दुनिया के दो प्रमुख तानाशाहों—हिटलर और मुसोलिनी—का नाम सर्वविदित है। लड़कपन में हिटलर कपड़े की फेरी किया करता था और लोहार के बेटे मुसोलिनी का बचपन भी दरिद्रता में ही व्यतीत हुआ था।

तो, मेरे कहने का तात्पर्य यह कि साहस, पुरुषार्थ एवं आत्मविश्वास ने ही दुनिया में महान् पुरुष पैदा किये हैं।

दरिद्रता के अंचल से ही मोती के अधिकांश कण बिखर पड़े हैं।

तुम भी इन कणों में आ सकते हो। किन्तु उस समय, जब संसार की विघ्न-बाधाओं को रौंदते हुए तुम इन साथियों—साहस, पुरुषार्थ एवं आत्मविश्वास—के संग आगे बढ़ सको। और, यदि तुम उसी उत्साह के साथ आगे बढ़ते जाओगे, तो देखोगे, तुम्हारे भविष्य का स्वर्ण-द्वार तुम्हारा स्वागत करने के लिये खड़ा है—सारे संसार की श्रद्धा-भरी आँखें तुम्हें अपने हृदय-पट पर बिठा लेने को आतुर हो उठी हैं!



बचपन के द्वार पर

शैशव के द्वार पर अनजान शिशु जब आ खड़ा होता है, उसके नन्हें से दिल में कुतूहल की जो लहरें आती हैं, उन्हें कौन अनुभव कर सकता है ? वह अपनी विस्फारित आँखों से जग की अनोखी चीजों को एकटक देखता रह जाता है और अपनी छोटी कल्पनाशक्ति से उन्हें समझने की चेष्टा करता है।

बचपन के ये दिन विधाता के वरदान हैं !

क्या तुमने इस जीवन के सुख का अनुभव नहीं किया है ?

मा की गोद में मीठी लोरियों की ध्वनि—दादी की गोद में 'राजा-रानी' की विचित्र कहानियाँ, परियों के देश—नीलम देश की राजकुमारी और, कभी मचलकर यह कह उठना—"हैं री, मैं तो चन्द्र खिलौना लैहों !"

यह एक स्वप्न होता है, ऐसा मीठा—इतना मधुर कि एक अंगरेज कवि ने जीवन-युद्ध से निराश होकर कहा था—

"Backward, turn backward, O time, in your flight;
Make me a child again, just for to-night!"

(ओ समय ! अपनी उड़ान में एक बार तुम पीछे लौट आओ और एक ही रात के लिये सही, फिर मुझे बालक बना दो !)

तब आती है बाल्यावस्था।

ये चार-पाँच वर्ष के दिन बड़े ही खतरनाक हैं। जिस ओर तुम्हारी प्रवृत्ति होगी, उसी ओर तुम रह जाओगे। बाल्यावस्था के संस्कार जिन्दगी के पाये हैं। तुम्हें इसी अवस्था में अपनेको बदलना होगा; कारण तुम्हारे सम्मुख भविष्य का सिंहद्वार है। तरुणावस्था की यह प्रथम सीढ़ी सचमुच ही तुम्हारा पथ-प्रदर्शक है। जीवन के संग्राम में इसी समय तुम पैर रक्खोगे।

इतिहासों के पन्ने उलट जाओ—संसार में जितने महापुरुष हुए हैं, उन्होंने इसी अवस्था में अपनेको उस ढाँचे में डाला है। तलवार की धार पर चलने का साहस उन्होंने इसी अवस्था में किया है।

कठिनाइयाँ मुँह बाये खड़ी थीं, बाधाओं के बादल सिर पर मंडरा रहे थे। किन्तु ये महापुरुष क्या उनसे विचलित होने-

वाले थे ? उनका संकल्प महापंडित राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में रहा था—"या तो अपने संकल्प को पूरा करूँगा या मृत्यु की गोद में विश्राम लूँगा।"

कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ की कहानी तुम्हें ज्ञात ही है। इसी अवस्था में उन्होंने अनुभव किया था —दुनिया, दुःख, रोग, बुढ़ापा, तृष्णा एवं श्रेणीभेद से पीड़ित है। इनसे बिना छुटकारा पाये 'मानव' पूर्णरूपेण 'मानव' नहीं बन सकता। इनका इलाज ढूँढ़ना ही होगा। वैभव के ये सारे साधन मिथ्या हैं। ये 'सत्य' नहीं, 'शिव' नहीं, और न सुन्दर हैं।

और, इन्हीं 'सत्यं' 'शिवं' 'सुन्दरं' की खोज में वह तरुण एक दिन वैभव को लात मारकर निकल पड़ा था !

हजारों वर्ष बीत गये; दुनिया के रंगमंच पर बहुत-से परिवर्तन हुए। किन्तु आज भी जब उस तरुण सिद्धार्थ की याद आती है, तो लोगों को आँखों से श्रद्धा की दो बूँदें उस महापुरुष की याद में ढुलक ही पड़ती हैं !

साथियो, तुम भी इन्हीं पथों से आओ, जिनपर न जाने कितने महापुरुषों के चरण-चिह्न अंकित हैं।

यदि तुम अपने जीवन को 'सार्थक' देखना चाहते हो—

तो तुम्हें इन पथों को पहचानना ही होगा; और पहचानने की यह सीढ़ी तो तुम्हारे सामने ही है।

दृढ़संकल्प लिये, कठिनाइयों का स्वागत करते हुए—अपने अधरों पर मुस्कान लेकर तुम आगे बढ़ चलो। हिचको नहीं, डर को स्थान न दो। मानव-जाति के कल्याण के लिये तुम्हारा यह साहस, यह पुरुषार्थ, प्रशंसनीय रहेगा और एक-न-एक दिन दुनिया तुम्हारी सच्ची लगन पर मुग्ध होगी ही।

